प्रकाशक—गोविन्द भवन कार्यालय, गीता प्रेस, गोरखपुर

सं० २०४३ प्रथम संस्करण ५,०००
मूल्य २.५०

पता—गीताप्रेस, पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)

मुद्रक, राधा प्रेस, गांधीनगर, दिल्ली-११००३१

विषय-सूची

॥ श्रीहरिः ॥

नम्र निवेदन

परम पूज्य स्वामी श्रीरामसुखदास जी महाराज के प्रवचनो में से कुछ विशेष प्रवचन मूल रूप में प्रकाशित किए जा रहे हैं। इससे पूर्व भी स्वामीजी महाराज के प्रवचनो की कुछ पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। उन पुस्तकों की लोकप्रियता से इस प्रकाशन में उत्साह और प्रेरणा मिली है। फलस्वरूप प्रस्तुत पुस्तक आपके समक्ष है।

पूज्य स्वामीजी महाराज के प्रवचन बडे ही मार्मिक, हृदय-स्पर्शी और गंभीर होते हैं जिन्हें कल्याण-कामी सत्संगी भाई, बहिन बड़ी सरलता से समझ लेते हैं। भगवान हमारे है, उन पर हमारा अधिकार है। संसार से लोक व्यवहार की दृष्टि से हमारा इतना ही सम्बन्ध है कि हम उसकी यथाशक्ति सेवा कर दें। भगवत्प्राप्ति इसी जीवन में सम्भव है और अत्यन्त सुलभ है। इन बातो पर पूज्य स्वामीजी महाराज विशेष बल देते हैं।

आशा है पाठकगण इस पुस्तक का अध्ययन व मनन करके पूरा-पूरा लाभ उठायेंगे।

—प्रकाशक

परम शान्ति का उपाय

मनुष्य केवल अपने अनुभव का आदर करे तो उसका काम बन जाय। अनुभव क्या है? अपने पास जो चीज मिली है वह सब अपनी नही है। यह खास बात है। जो मिली हुई होती है वह अपनी नहीं होती है। शरीर, धन, जमीन, वैभव, सम्पत्ति जो कुछ मिला है वह अपना नहीं है। इस बात पर विचार करें। ऐसा मानने से ममता मिट जाती है। ममता ही नही अहंता भी मिट जाती है। इस शरीर को भगवान ने–

'इदं शरीरं कौन्तेय क्षेत्रं'

(गीता १३।१)

इद (यह) कहा है। जो 'यह' होता है वह 'मैं' नहीं होता। और जो 'मै' होता है, वह 'यह' नही होता। 'इदं शरीरं' कहकर आगे शरीर का विवेचन करते है–

महाभूतान्यहंकारो बुद्धिरव्यक्तमेव च।
इन्द्रियाणि दशैकं च पञ्च चेन्द्रियगोचराः॥

(गीता १३।५)

पाँच महाभूत, अहंकार, बुद्धि, इन्द्रियाँ तथा मन प्रकृति सहित सब 'इदं शरीरं' के अन्तर्गत हैं। अतः यह शरीर 'मैं' नही हूँ—इस बात को दृढ़ता से समझ लें।

फिर प्रश्न उठता है कि यह शरीर मेरा है? आप इस शरीर को जितना और जैसे चाहे रख सकते हैं क्या? इसमें जो परिवर्तन चाहें कर सकते है क्या? वृद्धावस्था को रोक सकते हैं क्या? इसे मौत से बचा सकते है क्या? यदि ये आपके हाथ की बात नहीं, तो फिर यह शरीर आपका कैसे? अतः ममता और अहंकार को जीवित रहते हुए छोड़ दो।

'निर्ममो निरहंकारः स शान्तिमधिगच्छति।'

(गीता २।७१)

इससे शान्ति को प्राप्त हो जाओगे। अहंता-ममता को नहीं छोड़ोगे, तो भी ये तो छूटेंगे ही। ये 'मैं' पन और 'मेरा' पन रहेंगे नहीं। परन्तु आप इन्हें नहीं छोड़ोगे तो अशान्ति, दुःख, संताप और जलन होते रहेंगे। इस शरीर से किए गए पाप तथा पुण्य के फल भोगने के लिए अनेक जन्म लेने पड़ेंगे। इस लिये यदि आप यह स्वीकार कर ले कि शरीर, इन्द्रियां, मन बुद्धि तथा अहम् मेरे नही हैं तो इनके द्वारा की गई क्रिया भी आपकी नहीं होगी। इस

बात को गीता ने कहा है–

'गुणा गुणेषु वर्तन्त'

(गीता ३।२८)

अर्थात् गुण ही गुणो में बरत रहे हैं।

प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः ।
अहंकारविमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते ।।

(गीता ३।२७)

वास्तव में सब कर्म प्रकृति के गुणों द्वारा किए जाते है। परन्तु अहंकार से मोहित अन्तःकरणवाला पुरुष (अज्ञानी) मैं कर्त्ता हूँ, ऐसा मान लेता है। तो क्या करना है ?

करना है 'नैव किंचित्करोमीति युक्तो मन्येत' ऐसा मान लेना कि कुछ नही करता हूँ, क्योंकि मैं जानने वाला हूँ और ये सब जानने में आने वाले है। इनसे होने वाली क्रियाएँ मेरी कैसे हुई ?

प्रकृत्यैव च कर्माणि क्रियमाणानि सर्वशः ।
यः पश्यति तथात्मानमकर्तारं स पश्यति ।।

(गीता १३।२९)

जो यह जानता है कि क्रिया केवल प्रकृति के द्वारा होती है, वह अपने को अकर्ता देखता है। और जब अपने को अकर्ता देखता है तो–

यस्य नाहंकृतो भावो बुद्धिर्यस्य न लिप्यते ।
हत्वापि स इमाँल्लोकान्न हन्ति न निबध्यते ।।

(गीता १८।१७)

वह सब लोकों को मार कर भी वास्तव में न तो मारता है न पाप से बँधता है। मनुष्य अहंकृत भाव से ही फँसा है, और वह अहंकृत भाव वास्तव में है नहीं, केवल माना हुआ है। और माना हुआ न मानने से छूट जाता है। यह आपके, हमारे सब के अनुभव की बात है। अतः इस बात को मान लें कि शरीर मै नहीं हूँ और मेरा नहीं है। शरीर अलग है और मैं अलग हूँ।

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय
नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।

(गीता २।२२)

जैसे मनुष्य फटे कपड़ों को छोड़ कर, नए कपड़े धारण करता है। तो कपड़ा मै नही होता, इसी प्रकार शरीर भी मैं नहीं हूँ और मेरा नहीं है। यदि मैं और मेरापन बढ़ाते रहेंगे कि मैं पढ़ जाऊँगा, पण्डित बन जाऊँगा, व्याख्यानदाता बन जाऊँगा, ऊँचा बन जाऊँगा, धनवान् बन जाऊँगा, और मेरे धन हो जाएगा, सम्पति हो जाएगी, परिवार हो जाएगा। इस प्रकार मै और मेरापन बढ़ाते रहोगे तो शान्ति और सुख की प्राप्ति नहीं होगी। और जहाँ अहंता-ममता छोड़ी कि उसी क्षण 'स शांति मधिगच्छति' शांति को प्राप्त हो जाओगे। तो प्रश्न था कि—

शान्ति कैसे मिले ?

अहंता-ममता बढ़ा कर अशांति आपने स्वय पैदा की हुई है। जितनी अहता-ममता अधिक होगी, उतनी अशांति अधिक होगी। और अहंता-ममता का जहाँ त्याग किया कि तत्काल शान्ति मिली।

'त्यागाच्छान्तिरनन्तरम्

(गीता १२।१२)

सीधी सरल बात है, व्यवहार में कह दो कि जमीन, मकान, स्त्री, पुत्र, परिवार हमारे है; परन्तु अन्दर से इनमें ममता और आसक्ति न रखो।

एक प्रसंग आता है कि एक बार एक साधु बाबा नगर में भिक्षा करके एक बगीचे में बैठ गए, तो सायं-काल में राजा वहाँ आए और साधु बाबा से पूछा कि यहाँ कैसे बैठे हो ? किसी धर्मशाला या सराय में जाना चाहिए। साधु बाबा ने कहा कि यह सराय ही तो है। राजा ने कहा कि यह तो मेरी कोठी है। साधू बाबा बोले कि अच्छा आपकी कोठी है। आपसे पहले कौन रहते थे ? राजा ने कहा—'मेरे पिताजी रहते थे।' उससे पहले कौन रहते थे ? बोले कि मेरे दादाजी रहते थे। हम यहाँ पीढ़ियों से रहते आये हैं। बाबा ने पूछा कि क्या आप इसमें सदा

रहोगे ? राजा बोले कि जब तक हम जीवित है, तब तक हम रहेंगे, फिर हमारे लड़के रहेंगे। साधु बोले तो फिर धर्मशाला या सराय किसे कहते हैं ? एक आया, एक गया, यही धर्मशाला में होता है। व्यक्ति, वस्तु, पदार्थ हमें जो भी मिलते है, उनका सदुपयोग करना है, उन पर अधिकार नहीं जमाना है। कबीर दास जी ने शरीर को चादर मानकर कहा है-—

कबीरा चादर है झीनी, सदा राम रस भीनी।

फिर अन्त में कहा है :–

नौ दस मास बुनता लाग्या, मूरख मैली कीनी,
दास कबीर जुगति से ओढ़ी, ज्यों की त्यों धर दीनी।

इसका अर्थ हुआ कि शरीर में मै-पन और मेरा पन नही करना है। इसका सदुपयोग अपने कल्याण के लिए करना है। इस बात का पक्का विचार कर ले कि यह शरीर, ससार की वस्तुएँ, सामग्री सब ससार की है और संसार की सेवा के लिए मिली है। इन्हें अपनी न मान कर संसार की मानें और संसार की सेवा के लिए माने। इससे वस्तुओं का सदुपयोग होगा। परन्तु अपनी और अपने लिए मानेंगे, तो वस्तुओ का दुरुपयोग होगा। और दुरुपयोग से हमें दण्ड भोगना पड़ेगा। इन्हें अपना मानने से लाभ तो कोई होगा नही और हानि किसी तरह की भी बाकी रहेगी

नहीं । इन पर अपना अधिकार जमाना, कब्जा करना बेईमानी है और यही बन्धन है । ये भगवान की है, या संसार की है, या प्रकृति की है, जिसकी है उसकी माने, तो यह मुक्ति है । भक्तियोग में भगवान की है, कर्मयोग में ससार की है और ज्ञानयोग मे प्रकृति की है । अतः इन्हें अपनी तथा अपने लिए न मानें ।

एक दूसरी बात है कि हम इस शरीर तथा वस्तुओं से सुख लेना चाहते है । परन्तु यह मानव शरीर तथा इसकी सामग्री सुख तथा भोग के लिए नहीं मिली है ।

'एहि तन कर फल विषय न भाई'

यह तो दूसरों को सुख देने के लिए तथा दूसरो की सेवा के लिए मिली है । यदि सुख भोगना चाहो तो स्वर्ग में जाओ, दुःख भोगना हो तो नरक में जाओ । सुख-दुःख दोनों से ऊँचा उठना हो तो मनुष्य शरीर में आओ । सुख-दुःख दोनों से ऊँचे उठने पर ही महान आनन्द, महान शांति की प्राप्ति होगी । परन्तु यदि सुख चाहोगे तो दुःख भोगना पडेगा ही । और यदि सुख की कामना छोड़ दोगे तो महान आनन्द और महान शांति की प्राप्ति होगी । अतः शांति का उपाय यह है कि शरीर मै नही हूँ, शरीर, संसार मेरे नही है और मेरे लिए भी नही है । मुझे दूसरो से सुख लेना नहीं है अपितु दूसरों को सुख देना है ।

प्रभु की प्राप्ति साधना से नहीं केवल मान्यता से

हम सब का अनुभव है कि मै तो वही हूँ जो बचपन में था, परन्तु यह शरीर और संसार प्रति क्षण बदल रहे है। इसी प्रकार शास्त्र बताते है कि परमात्मा है। 'मै' और 'परमात्मा' न बदलने वाले हुए और शरीर और संसार बदलने वाले हुए। 'मै' की 'परमात्मा' से एकता हुई और शरीर की संसार के साथ एकता हुई। इस शरीर में जो गाढ़ापन दीखता है, वह पृथ्वी का अंश है। इसमें जो गर्मी है वह सूर्य तथा अग्नि का अंश है। इसकी वायु, वायु का अंश है और इसमें पोलाहट अर्थात् जो अंगुली गड़ती है वह आकाश का अंश है।

मैं हूँ, यह आत्म-ज्ञान है और परमात्मा है, यह परमात्म-ज्ञान है। मैं और परमात्मा की एकता है और शरीर और हमारी कहलानेवाली सामग्री की संसार के साथ एकता है। अतः इन अपनी कही जाने वाली वस्तुओं के द्वारा संसार की सेवा कर

देना है और अपने आपको परमात्मा को देना है। वस इतनी ही बात है।

अब प्रश्न उठता है कि जब बात इतनी सुगम है तो फिर यह ठहरती क्यों नही ? इसका उत्तर है कि आप इस बात को महत्व नहीं देते, आदर नहीं देते। यह अभ्यास जन्य नही है। इसे या तो मान लो या जान लो। जैसे यह नेपाल है तो आपने इसका अभ्यास नहीं किया, केवल मान लिया कि यह नेपाल है। आप मानने में स्वतन्त्र है। मानना चाहो तो अभी मान सकते हो और न मानना चाहो तो जन्म-जन्मान्तर तक भी नहीं मान सकोगे। आप ऐसे ही मान लो कि परमात्मा है तो काम बन जाय। या आप जान ले कि मेरा (अविनाशी का) नाशवान् संसार के साथ सम्बन्ध नही है तो भी काम बन जाय। मै नही बदलता हूँ, परन्तु शरीर और संसार बदलते हैं, यह बिल्कुल जानी हुई बात है। इस जानने और मानने में अभ्यास की आवश्यकता नहीं। यह सच्ची और शास्त्रों की बात है। यदि आप इस बात को आदरपूर्वक स्वीकार कर लें तो आपको करोड़ों रुपये प्राप्त करने से भी उतनी शांति नहीं मिलेगी जितनी कि इस बात को मानने से मिलेगी।

एक बात और है कि आप उस बात को महत्त्व

नही देते जो बात मुफ्त में मिल जाती है। यदि एक एक बात पर सौ-सौ रुपयों का टैक्स लगा दें, तो शायद उस बात को आदर दोगे। और खूब भटकने के बाद, बद्रीनारायण जैसे पहाड़ों में घूमने के बाद यही बात प्राप्त होती तो इसे महत्त्व देते और मान लेते। अभी घर बैठे बिना कीमत के बात मिल रही है अतः महत्त्व नहीं देते। जिस किसी भाई ने इस बात को महत्त्व दिया है, इसका मूल्य चुकाया है, उसे लाभ हुआ है। जिस किसी भाई ने इस बात के लिए अपमान सहा है, निन्दा सही है, कष्ट सहा है, विपरीत परिस्थिति सही है, उसे लाभ अवश्य हुआ है; क्योंकि उसने मूल्य चुकाया है। अगर जोरदार लगन और तड़पन हो जाय तो तत्त्वज्ञान तत्काल हो जाय। अतः आप इस बात को महत्त्व दें कि अब तो बात हमें मिल गई, अब यह निकल नहीं सकती।

उदयपुर के राणा के बारे में सुना है कि वे सत्संग की बात सुनते और उसमें जो बात अच्छी लगती, उसे सुनते ही तुरन्त चल देते कि यह बात कहीं निकल न जाय। अतः आज ही यह बात दृढ़ता से पकड़ लो कि आप स्वयं रहने वाले हो और ये शरीर संसार बदलने वाले है। आप न बदलने वाले, बदलने वालों के साथ मिल जाते हो, अपनी उनसे एकता

मान लेते हो, यही गलती होती है। यदि आप इस बदलने वाले शरीर-संसार के साथ न मिलो तो समता में स्वतः स्थिति है। आप इनसे भिन्न हो। इसी कारण आप अनुकूलता-प्रतिकूलता का अनुभव करते हो। दोनों परिस्थितियों का अनुभव वही कर सकता है जो दोनों समय रहता हैं। आप परिस्थिति के प्रभाव को स्वीकार करते हो, तभी सुखी-दुःखी रहते हो। यदि परिस्थिति के प्रभाव को स्वीकार न करो तो न सुख होगा, न दुःख। समता में स्वतः स्थिति हो जायगी।

आपने सुना होगा कि नारदजी ने व्यासजी को अपने पूर्व जन्म की बात कही। नारदजी माँ के साथ सन्तों के पास जाते थे तो उनकी भगवान में भक्ति हो गई। फिर उनकी माँ मर गई। बालक को माँ के मरने पर बहुत बड़ा दुःख होता है, क्योंकि माँ बालक का आधार है। परन्तु नारदजी खुश हुए। अतः सुखी-दुःखी होना अपने हाथ की बात है। इस वास्ते भगवान कहते हैं–

'न त्वं शोचितुमर्हसि',

(गीता २। २७)

तू शोक करने के योग्य नहीं है। और अन्त में कहते है 'मा शुचः' शोक मत कर। शोक करना, न

करना अपने हाथ की बात है। शोक-चिन्ता करना; सुखी-दुःखी होना प्रारब्ध का फल नहीं है। अनुकूलता-प्रतिकूलता का आना-जाना प्रारब्ध (कर्मों) का फल है। परन्तु उसमें सुखी-दुःखी होना या न होना आपकी मर्जी है, ये सुख-दुख आने-जाने वाले हैं। इनमें क्या तो सुखी होवे और क्या दुःखी होवें ? बड़े आश्चर्य की बात है। जैसे अभी यदि हम दरवाजे पर खड़े हो जायें और मोटरें खूब आयें तो हम राजी हो जायँ कि आज तो बहुत मोटरें आयीं। दूसरे दिन मानो मोटर आयी नहीं तो दुःखी हो जायँ और लगे रोने कि आज तो कोई मोटर नहीं आयी। अरे ! हर्ज क्या हुआ ? मोटरें नहीं आयीं तो धूल नहीं उड़ी। ऐसे ही अनुकूल-प्रतिकूल परिस्थितियाँ आती-जाती रहती हैं, कभी अनुकूल आ गई, कभी नहीं आयी। कभी प्रतिकूल आगई, कभी नहीं आयी। ये धन-सम्पत्ति और परिवार आदि सभी आने-जाने वाले हैं और आप रहने वाले हो। इनमें राजी या नाराज क्या हों ? 'समदुःखसुखः स्वस्थः' सुख-दुःख में सम रहने से अपने 'स्व' में स्थित हो जाएगे अर्थात् परम आनन्द तथा परमशांति प्राप्त कर लेंगे, लोग भी प्रशंसा करेंगे और महात्मा कहेंगे। भगवान कहेंगे कि मेरा प्यारा है। परन्तु यदि हम सुख-दुःख में सुखी-

दुःखी होते रहेगे तो हम तो दुःख पायेंगे ही, लोग भी निन्दा करेंगे और भगवान भी राजी नहीं होंगे। तो बताओ क्या फायदा हुआ ?

धनवान हो जाना, स्वस्थ हो जाना, मान-प्रतिष्ठा प्राप्त कर लेना—यह अपने हाथ कीबात नही है। तो फिर इनमें सुख-दुःख क्यों हो ? अब इस बात को आदर दो, महत्त्व दो, कीमत दो कि अब सुखी-दुःखी नहीं होंगे। इस बात को सीखना नही है। इसका अभ्यास नही करना है। इसे तो मानना है। फिर बार-बार याद करने की आवश्यकता नही है। जैसे आपने अपने आपको ब्राह्मण या क्षत्रिय या वैश्य मान लिया। अब काम-धंधा करते हुए, खाना-पीना करते हुए यह याद नही करना पड़ता। स्वतः याद रहता है। यदि न याद रहे तो भी कोई भूल नही होती। भूल कब मानी जायगी कि आप ब्राह्मण हो, पर अपने आपको ब्राह्मण स्वीकार न करके शूद्र मान ले।

इसी प्रकार मैं परमात्मा का हूँ—यह मान लो फिर भले ही काम आदि करते समय आप भूल जायँ, परन्तु यह भूल नही मानी जाएगी। भूल कब मानी जाएगी ? भूल उस समय मानी जायगी, जिस समय आप मान लेगे कि मै परमात्मा का नहीं हूँ। यदि आप ऐसा नही मानते तो अखण्ड मान्यता भीतर

रहेगी। जैसे अपने नाम, जाति, स्थान, देश के साथ अखण्ड मान्यता हो जाती है, इसी प्रकार परमात्मा के साथ अखण्ड मान्यता हो जाएगी। ये नाम, जाति, स्थान, देश, शरीर आदि तो अपने है नहीं, केवल माने हुए है। परन्तु परमात्मा अपने है स्वयं भगवान, सद्-ग्रन्थ तथा सन्त ऐसा कहते हैं। अतः आज ही अभी-अभी यह बात मान लो कि मैं परमात्मा का हूँ और परमात्मा मेरे हैं।

नारायण नारायण नारायण नारायण



अभिमान और अहंकार का त्याग सम्भव है

निर्ममो निरहंकारः स शान्तिमधिगच्छति ॥

(गीता २।७१)

निर्ममो निरहंकारः समदुःखसुखः क्षमी ॥

(गीता १२।१३)

अहंकारं बलं दर्पं कामं क्रोधं परिग्रहम् ।
विमुच्य निर्ममः शान्तो ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥

(गीता १८।५३)

इन श्लोकों में भगवान ने अहंता-ममता अर्थात् मैं और मेरेपन से रहित होने की बात कही है । इससे सिद्ध होता है, कि अहंता-ममता का त्याग हो सकता है। अगर यह बात सम्भव न होती तो भगवान यह बात न कहते। भगवान ने कहा है तो इसका अर्थ है कि इनका त्याग अवश्य हो सकता है। त्याग उसीका हो सकता है जो वास्तव में नही होता। वास्तविक का त्याग नही होता। जैसे यदि अग्नि से उष्णता या प्रकाश का त्याग करावे, तो कैसे त्याग करे? सूर्य अपने प्रकाश या गर्मी का त्याग कैसे

करे ? अहंता ममता हमने बनाई है। इसको सन्तों ने माया कहा है। भगवान राम ने भी पंचवटी में यही कहा है—

मैं अरु मोर तोर तै माया।
जेहि बस कीन्हे जीव निकाया॥

मैं और मेरा, तू और तेरा यह माया है। इस माया में ही संसार फँसा हुआ है। माया का त्याग किया जा सकता है। अब विचार करना है कि मैं और मेरे पन का त्याग कैसे हो ? पहले यह बात जंच जानी चाहिए कि इसका त्याग हो सकता है। दूसरी बात यह है कि यह 'मैं पन' माना हुआ है स्वयं का बनाया हुआ है। इस शरीर से पहले मै पन नहीं था, जन्म के बाद मैं पन आया और शरीर के नाश होने पर मै पन नहीं रहेगा। बीच में ही मै पन पैदा हुआ। इसी प्रकार बोरे में पड़े आटे को और कनस्तर में पड़े घी को कोई 'मैं' नहीं कहता। पर जब वह पेट में चला गया तो वह भी 'मैं' हो गया। इसी प्रकार जब वह मैला-टट्टी बन गया तो 'मैं पन' मैला में चला गया। वह मैला भी तो मैं ही था। परन्तु अब उसे मै कहते हैं क्या ? ऐसे ही मानों हाथ या पैर सड़ जाय, डाक्टर उसे काट दे तो उस 'मैं' को आप फेंक देते हैं। ऐसे ही मर जाने के बाद शरीर

यही पड़ा रह जाता है और जला देते हैं। जरा भी दया नहीं आती। अगर शरीर 'मै' होता तो या तो शरीर को भी अपने साथ में ले जाते अथवा शरीर के साथ हम भी रहते। परन्तु ऐसा नही होता। शरीरी चला जाता है और शरीर यहीं पड़ा रह जाता है। यह इसलिए है कि इस शरीर में 'मैंपन' माना हुआ है और संसार में मेरापन माना हुआ है।

आप इस मैंपन को बदल देते है। गृहस्थ आश्रम में रहते है तो कहते है कि मै गृहस्थी हूँ। परन्तु साधु बन जाते है तो कहते है, मैं साधु हूँ। माता-पिता के सामने कहते हो कि मैं पुत्र हूँ, और पुत्र के सामने कहते हो कि मै पिता हूँ। इसी प्रकार भाई के सामने कहते हो कि मैं भाई हूँ, पत्नी के सामने कहते हो कि मै पति हूँ। आप से कोई पूछे कि तुम सच बताओ कि तुम पुत्र हो या पिता हो या पति हो ? तो इसका उत्तर है कि आप स्वयं पुत्र, पिता, भाई, पति कुछ नही हो। पुत्र, पिता, भाई, पति, आदि दूसरों के सामने हो। दूसरों की अपेक्षा से बने हुए हो। इस मैंपन को नष्ट करने के लिए एक बडी सुगम बात है कि मै पन को शुद्ध कर लिया जाय। शुद्ध कब होता है शुद्ध उस समय होता है कि जब माता-पिता के सामने जायँ तो वह कार्य करें जो सुपुत्र से सुपुत्र करता है।

ऐसे ही पत्नी के सामने जायँ तो पति का पूरा कर्तव्य पालन करें। दूसरे कर्तव्य पालन करें या न करें। इसकी तरफ विशेष ख्याल नहीं करना है। थोड़ा ख्याल इसलिए करना है कि पुत्र आदि को शिक्षा देना हमारा कर्तव्य है। उनको कह देना, समझा देना अपना कर्तव्य है। परन्तु यदि वे कहना न माने तो दु:ख न करे। और हमने तो अपना कर्तव्य पालन कर दिया इस बात का अभिमान भी न करे। सत्पति अपनी पत्नी के साथ न्याययुक्त, धर्मयुक्त बर्ताव कर दे, फिर चाहे पत्नी आपसे लड़ाई करे, आपको दु:ख दे, कर्कश व्यवहार करे। आप अपने कर्तव्य से मत चूको। ठीक प्रकार से अपना कर्तव्य पालन करो तो क्या होगा ? आपका 'मै पन' शुद्ध हो जायगा। मैपन शुद्ध होने पर इसे छोड़ने की ताकत आप में आ जायगी। परन्तु जब तक अन्यायपूर्वक कार्य करते रहोगे, तब तक मैपन और मेरेपन की माया छूटेगी नहीं। परन्तु शुद्ध होने पर यह छूट जायगी, बाँधेगी नही। केवल व्यवहार मात्र के लिए मैं और मेरा रहेगा।

जैसे आप किसी 'मिल' में काम करते है तो कहते हैं कि मैं अमुक मिल का आदमी हूँ। ऐसे ही रेलवे में कार्य करते हैं तो कहते हैं कि मैं रेलवे कर्मचारी हूँ। परन्तु सदा अपने को मिल का या रेलवे

का कर्मचारी नही मानते। इसी प्रकार आप अपने को पिता पुत्र, पति भाई माने। ऐसे ही यदि आप धनी है तो निर्धनों की अपेक्षा धनी है, निर्धनो ने ही आपको धनी बनाया है। उदाहरण के लिए यदि नगर में आप लखपति है और बाकी सब करोडपति है तो आप धनी नही कहलाते हो। उनके बीच क्या कभी आपके मन में लखपति होने का अभिमान आता है ? परन्तु आपके अतिरिक्त यदि सभी निर्धन है तो आप धनी तथा लखपति कहलाओगे। अतः इन निर्धनों के कारण आप धनी है। इन्होने आपको लखपति बनाया। इसलिए आपको निर्धनों की सेवा करनी चाहिए। जो उपकार लेता है, परन्तु उपकार करता नही, वह कृतघ्न होता है। अत धन का अभिमान, विद्या-बुद्धि का अभिमान, बल का अभिमान करना गलती है भगवान सोलहवे अध्याय मे कहते है–

दम्भो दर्पोऽभिमानश्च क्रोधः पारुष्यमेव च।
अज्ञानं चाभिजातस्य पार्थ संपदमासुरीम् ॥
(गीता १६।४)

ये अभिमान और अहकार आदि आसुरी सम्पदा को प्राप्त पुरुष के लक्षण हैं। फिर कहते है–

"दैवी सम्पद्विमोक्षाय निबन्धायासुरी मता"

दैवी सम्पदा मुक्ति देनेवाली है और आसुरी सम्पदा बांधनेवाली है। अतः धन, विद्या, बुद्धि, बल

और पद का अभिमान न करके दूसरों की सेवा करो। और पिता, पुत्र, पति आदि जो भी आप हैं, अपना कर्त्तव्यपालन नाटक की तरह बढ़िया से बढ़िया करो। स्वाँग को बिगाड़ना नहीं है और न उसका अभिमान करना है, अपितु जिन्होंने आपको बुद्धिमान्, विद्वान्, धनवान्, बलवान् बनाया अर्थात जिन मुर्खो, निर्धनों, निर्बलों के कारण आप विद्वान्, धनवान् और बलवान् बने हो उनकी सेवा करनी है। ब्राह्मण और साधु ब्राह्मणपने तथा साधुपने के अभिमान के कारण बड़े नहीं बने, अपितु त्याग के कारण बड़े बनें। आज उनमें अभिमान आ गया है इस कारण उनका तिरस्कार होने लगा। जब वे अपने आप को बड़ा मानने लगे तो उन्हें दुनिया ने बड़ा मानना छोड़ दिया।

श्राद्ध की ऐसा विधि आती है कि पहले ब्राह्मण को निमन्त्रण देना चाहिए। ब्राह्मण संयमपूर्वक ब्रह्मचर्य से रहे। यजमान के यहां भोजन करे, उनके पितरों का उद्धार करे। फिर अपने घर आकर गायत्री जप करे और प्रायश्चित करे। यह क्या था? यह ब्राह्मणो का त्याग था। लोगों को दीखता था कि ब्राह्मण दक्षिणा लेते हैं, अन्न खाते हैं। परन्तु था उल्टा। वे लेते थे थोड़ा और देते थे ज्यादा। लेते थे भौतिक चीज और देते थे आध्यात्मिक। इसलिए

उनकी महिमा हुई। ऐसे ही साधु निर्वाहमात्र की भिक्षा लेकर आध्यात्मिक ज्ञान तथा ईश्वर तत्त्व देते थे। दूसरों का उद्धार करते थे। इसलिए बड़े हुए। दाता हुए। केवल ब्राह्मण के घर जन्म लेने से या साधु बाबा का वेश लेने से बड़े नही बनते। इनमें अभिमान न आ जाय। इसलिए इनकी जीविका गृहस्थों के आधीन रखी। साधु को भिक्षा के लिए गृहस्थी के सामने हा पसारना ही पड़ेगा। उसमें गृहस्थी भाई का हाथ ऊपर और साधु का नीचे रहेगा। यह भगवान ने सब का सम्बन्ध जोड़ा रखा है। अपनी-अपनी जगह पर रहते हुए अपने कर्त्तव्य का पालन करोगे तो संसिद्धि को प्राप्त हो जाओगे।

स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः।

(गीता १८।४५)

ब्राह्मण प्रतिग्रह (दान) लेने से दोषी होता है यह कायदा नहीं है। यदि ब्राह्मण यजमान के हित के लिये, उसके उद्धार के लिए लेता है तो वह ऋणी तथा दोषी नहीं होता। परन्तु यदि वह अपने स्वाद के लिए, अपने सुख के लिये और धनी बनने के लिए लेता है तो वह दोषी होता है। यदि ब्राह्मण उनके उद्धार के लिए लेता है तो वह वास्तव में यजमान से लेता नही उसे देता है। इसी प्रकार यदि आप नाम कीर्ति के लिए दान-पुण्य करते हो तो वह देना भी लेना है।

जब तक इस प्रकार की आपकी नीयत है तब तक आप दाता नहीं हो सकते ।

दूसरी बात है कि यदि आप के पास धन, विद्या आदि है और उसे आप दूसरों को देते हैं तो यह कोई ऊँचे दर्जे की चीज नही है। यह तो इन्कमटैक्स चुकाना है। उसमें यदि आप बड़प्पन या अहंकार करते हैं तो यह आपकी गलती है। अहंकार करना तो जैसे अभी कुछ समय पहले कहा था आसुरी सम्पदा का लक्षण है, और आसुरी सम्पदा बाँधनेवाली है। अतः हमें इस आसुरी सम्पदा से ऊपर उठना है। अभिमान वस्तुओं तथा पदार्थों आदि को लेकर होता है और अहंकार शरीर को लेकर स्वयं में होता है। अतः हमें अहंकार तथा अभिमान का त्याग करना है।

नारायण नारायण नारायण नारायण

शाँति का मूल-मन्त्र

"करने में सावधानी-
होने में प्रसन्नता"

पराधीनता और स्वाधीनता

हम लोग सोचते है कि हमारे पास पैसा न होने से हम पराधीन हैं। यदि रुपये हो जायँ तो हम स्वाधीन हो जायँ। क्योंकि बिना रुपयों के जिस चीज को हम खरीदना चाहते है, खरीद नहीं सकते। यदि रुपया हो जाय तो हम जो कोई भी चीज खरीदना चाहें तो खरीद ले। परन्तु इसे ठीक प्रकार से समझना है। यदि आप रुपयों से चीज खरीद लेते है तो आप स्वाधीन कहाँ हुए? आप रुपयों के आधीन हुए। रुपये 'पर है 'स्व नही,' 'अतः पराधीन हुए। रुपयों के आधीन रहकर आपको स्वाधीनता का अनुभव होता है, यह गलती है। जैसे रुपयों के अभाव में पराधीनता है, ऐसे ही रुपयों के रहते हुए भी पराधीनता है। पहले रुपये नहीं थे वह दुःख था। अब, रुपये खर्च हो जायेगे; यह दुःख है। फर्क इतना ही है कि रुपयों के न रहने पर पराधीनता का अनुभव होता है, परन्तु रुपयों के आने पर ऐसी अंधेरी आती है कि पराधीनता का अनुभव नही होता। जिसको पराधीनता का अनुभव होता है, वह

पराधीनता से रहित अर्थात् स्वाधीन हो सकता है। पर जो पराधीन हो और पराधीनता का अनुभव न करता हो, वह स्वाधीन नही हो सकता। जब तक आपको प्रकृति से उत्पन्न होनेवाले प्राकृत पदार्थो की चाहना है तबतक आप बिल्कुल पराधीन है। क्योंकि ये प्राकृत पदार्थ रुपया, धन, शरीर आदि आने-जाने वाले उत्पन्न और नष्ट होने वाले है। परन्तु आप रहनेवाले है। आप शरीर के उत्पन्न होने से पहले भी थे, अब भी हैं और शरीर नष्ट होने पर भी रहेगे। अतः यदि आप शरीर, इन्द्रियो, अन्तः करण आदि के आधीन नही होंगे तभी आप स्वाधीन होगे। इनके आधीन होना तो पराधीन होना है। परमात्मा 'स्व' है। आप और परमात्मा दोनों रहनेवाले है। यदि आप परमात्मा के आधीन हो जायें, उनकी शरण हो जायँ तो स्वाधीन हो जायँगे। क्योंकि परमात्मा 'स्व है' अपने हैं। यदि हम प्रभु की शरण हो जायें। उनके परायण हो जायँ तो वे कहते है—

'मैं भगतन को दास भगत मेरे मुकुट मणि'

भगवान् आपको मालिक बना लेते है। अर्जुन भगवान् को कहते हैं कि मेरे रथ को दोनों सेनाओं के बीच में खड़ा कीजिए।

सेनायोरुभयोर्मध्ये रथं स्थापय मेऽच्युत ।।

(गीता १/२१)

भगवान् उसकी आज्ञा का पालन करते है । आप भगवान् के आधीन हो जाते है । परन्तु ये रुपये-पैसे जिनके लिये आप झूठ, कपट, बेईमानी, जालसाजी सब कुछ करते है, वे जाते समय आपसे पूछेंगे नही कि हम जा रहे है । चुपके से खिसक जायेंगे । कोई लिहाज नही करेंगे । इसी प्रकार यह शरीर जिसे आप 'मेरा' और कभी 'मैं' भी कह देते है, वर्षो तक अन्न, जल, वस्त्र आदि दिया, परन्तु एक या दो दिन भी अन्न-जल न दे तो पोल निकाल देगा । काम करना बन्द कर देगा । यह लिहाज नही करेगा कि वर्षो तक अन्न, जल दिया, अब दो दिन नहीं दिया तो कोई बात नही । यह इतना कृतघ्न है । आप इसकी गुलामी करते हो; परन्तु यह आपकी गुलामी नही करता । यह अपना नही है । इसे आप अपना मान लेते है यह धोखा है । इस पर आपका आधिपत्य नही है । अगर आपका आधिपत्य हो तो इसे कम-जोरी से बचा लो । बूढ़ा मत होने दो । बीमार मत होने दो और कम-से-कम मरने मत दो । आप ये कर सकते हो क्या ? यदि नहीं तो इसे अपना मानना गलती है ।

यह शरीर अपना इस बात में है कि इससे आपको जो लाभ लेना हो ले लो। इससे अपना उद्धार, अपना कल्याण कर सकते हो। उद्धार होगा शरीर की अंहता-ममता के त्याग से। संसार की सभी वस्तुएँ केवल त्याग के लिये, दूसरों की सेवा के लिये मिली हैं अपने लिए नही। अगर इस बात को मान लें तो महान शांति मिलेगी। ऐसा मानने से मरने का भय मिट जायगा। और तृष्णा तथा कामना मिट जायगी। कामना के मिटने पर दरिद्रता सर्वथा मिट जायगी। परन्तु इन चीजों को लेते रहोगे तो दरिद्रता बढ़ेगी।

'जिमि प्रति लाभ लोभ अधिकाई',।

ज्यों-ज्यों वस्तु अधिक होगी, त्यों-त्यों अभाव अधिक होगा। यह बात बड़ी पक्की, सच्ची तथा शास्त्रीय सिद्धांत की है। स्थूल रीति से भी मनुष्यों को मैंने देखा है कि जब धन कम था सत्संग में आते थे। भजन साधन करते थे और कहते थे कि ये धनी आदमी सत्संग में क्यों नही आते। हमारे तो पैसे की कमी है, खाने को पूरी रोटी नहीं है, फिर भी सत्संग में आने का मन रहता है। परन्तु जब उन लोगों के धन हो गया तो वे भी अब सत्संग में नही आते। यदि उनसे कोई कहे कि सत्संग में चलो तो

कहते हैं कि इतना काम-धंधा है कि जा नही सकते। दूसरे धनवानों को जो कहते थे वही दशा उनकी हो गई। ऐसा हमने देखा है। दूसरी बात है कि पैसा होने पर आसुरी सम्पदा का लक्षण अभिमान आ जाता है। अभिमानी के प्रति किसी को दया नहीं आती। गरीब के प्रति दूसरों को दया आ जाती है। धनी व्यक्ति के नौकर भी आपस में बात करते हैं कि सेठ के पास पैसे बहुत हो गये पर अकल नही है। उसका मुंह न देखे, पर क्या करें, पैदा (आमदनी) नही है, इस कारण इसके यहां नौकरी करनी पड़ती है। नौकर उससे घृणा करते है। आप स्वतंत्र तब हो सकते है, जब रुपयों की गुलामी न रहे। लाखों, करोड़ों रुपये आपके पास है, पर रुपयों की गर्मी आपके भीतर न हो, रुपयों के कारण आपमें अभिमान न हो, तब आप स्वतंत्र है, स्वाधीन है। परंतु रुपयों के रहने से स्वाधीन मानना बिल्कुल गलती है। परंतु क्या बतावे ? किसको कहें ? कैसे समझावे ?

आदि अविद्या अटपटी घट-घट बीच अड़ी।
कहो कैसे समझाइये, कुएँ भांग पड़ी॥

उसी कुएँ का पानी पी-पीकर सब पागल हो रहे है। साधु, गृहस्थ, पण्डित, मुर्ख, ब्राह्मण, वैश्य सब के एक ही धुन सवार है—हाय पैसा-हाय पैसा !

जिस दिन पदार्थो की गुलामी भीतर से निकल जायगी और यह वहम मिट जायगा कि आदमी रुपयों से बड़े बनते हैं, उस दिन लाखों, करोड़ों रुपये रहने पर भी आप स्वतंत्र हैं। और एक कौड़ी न रहने पर भी आप स्वतन्त्र है।परन्तु जब तक तृष्णा है तब तक आपके पास रुपये हों तो भी आप दरिद्र हैं। और रुपये न हों तो भी आप दरिद्र हैं। ये सब 'पर' है। इसी प्रकार सैन्यबल, राज्यबल के रहते हुए भी आप निर्बल है। क्योंकि यह पराया बल है, पराये बल से आप पराधीन होते हैं, स्वाधीन नही। अतः जड़ता के आश्रय का त्याग करो और चिन्मय परमात्मा का आश्रय लो जो 'पर' नहीं 'स्व' है, अपने है, परमात्मा के सिवाय कोई अपना नही है। उनके आधीन होते ही आप स्वाधीन हो जाते है स्वतन्त्र हो जाते है। उनके आश्रित होते ही दुनिया तथा दुनिया के नाशवान् पदार्थ ही नही, अपितु परमात्मा आपके वश में हो जायेंगे। अतः पदार्थो के आश्रित न रहें, उनकी गुलामी न करें। रुपये-पैसे न्याययुक्त कमाओ और उनका सदुपयोग करो। आप करोड़पति या लखपति कब हों ? जब कि करोड़ या लाख रुपयों को ठोकर मार कर चल दें और मन पर कोई असर न पड़े। परन्तु यदि लाख रुपयों में से चार-पाँच,

हजार रुपये भी खर्च हो जायें और भीतर खनखनाहट हो, तो आप लखपति नहीं, लखदास हो और पराधीन हो। परन्तु यदि वस्तुएँ आपके आधीन है, तो आप स्वाधीन हो चाहे रुपये आपके पास हों या न हों। रुपये हो जायँ, न हो जायँ इसकी परवाह नहीं।

सिद्ध्य-सिद्ध्यो समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते ॥

(गीता २/४८)

समः सिद्धावसिद्धौ च कृत्वापि न निबध्यते ॥

(गीता ४।२२)।

यदि सिद्धि के गुलाम हो जायेगे तो असिद्धि मे दुःख पाना पड़ेगा। पराधीनता नही छूटेगी।

यदि अपने कमाए हुए रुपयों से आप बड़े हो जाते है तो सोचो कि आप बड़े हुए कि रुपये बड़े हुए ? रुपयों को आपने पैदा किया है या आपको रुपयों ने पैदा किया है रुपयों से अपने को बड़ा मानना, यह बहम पड़ गया है। बडप्पन रुपयों के होने में नही, रुपयों के सदुपयोग में है। रुपयों के द्वारा बढ़िया से बढ़िया काम करो। कभी-कभी रुपये तो खर्च कर देते है, परन्तु कंजूसी कायम रखते है। रुपये नरकों में ले जाने वाले नही है, अपितु कृपणता नरको में ले जानेवाली है। अतः सज्जनो! आप अवसर पड़ने पर खूब खर्च करो। लुटाओ भी मत,

परन्तु कंजूसी मत करो। भीतर से रुपयों की गुलामी निकाल दो। रुपये आप पास में रखो, न रखो, ज्यादा रखो, थोड़े रखो कोई आग्रह नही। परन्तु उनकी जो दासता है, गुलामी है, यह गलत है। आप परमात्मा के चेतन अंश हो, और चेतन अंश को रुपये दास बना ले, यह बड़े दुःख एवं आश्चर्य की बात है। इस वास्ते उनके दास न बने और प्रभु के चरणों का आश्रय ले, तो सदा स्वतंत्र हो जाओगे।

अतः इस पराधीनता से छूटने का उपाय है कि हम स्वीकार कर लें कि हम भगवान् के हैं और भगवान् हमारे हैं। संसार हमारा नहीं है और हम संसार के नहीं है। परन्तु जो भी साँसारिक चीजे शरीर, धन, विद्या, बुद्धि, बल हमारे पास है सब संसार की सेवा के लिए हैं अपने लिए नही। लेना किसी से कुछ नही, देना ही देना है। अतः भगवान् के चरणों की शरण होकर, अपनी कहलाने वाली सामग्री; शक्ति तथा सामर्थ्य से सब की सेवा करे जिससे हम स्वाधीन हो जायें।

राम राम राम राम राम

आवश्यकता और इच्छा

बिलकुल अनजानपने का नाम अज्ञान नहीं है और पूरी जानकारी का नाम भी अज्ञान नही है। कुछ जानते है और कुछ नही जानते, उसका नाम अज्ञान है अर्थात् अधूरे ज्ञान को अज्ञान कहते है। सर्वथा ज्ञान के अभाव को अज्ञान नही कहते। जैसे पत्थर को कोई अज्ञानी नही कहता; क्योंकि ज्ञान है हो नही उसमें। दूसरे अज्ञानी वह है जो जानता है, पर मानता नही है। यदि वह जैसे जानता है, वैसे ही मान ले और वैसे ही कर ले तो उसका अज्ञान बिलकुल दूर हो जायगा। इसमें न किसी के पास जाने की आवश्यकता है न सीखने की।

मनुष्य क्या जानता है। यह जानता है कि शरीर, कुटुम्ब, ससार सबके सब पहले नहीं थे और फिर नहीं रहेंगे। परन्तु मै पहले भी था और शरीर के बाद भी रहूँगा। परन्तु इस बात को हम मानते कहाँ है ? हम शरीर और संसार को रखना चाहते है। हम चाहते है कि शरीर निरोग रहे, धन-सम्पत्ति आ जाय, आदर-सत्कार हो। परन्तु कौन नही जानता

कि जिस शरीर और नाम को लेकर हम यह सब चाहते हैं, वह शरीर और नाम पहले भी था, पर वह आज याद ही नहीं है ऐसे ही यह शरीर और नाम भी याद नही रहेगा जिसके लिए रात-दिन परिश्रम कर रहे हैं। इसका नाम अज्ञान है। जो कुछ करो, दूसरों के लिए करो। संसार के लिए करो। संसार से मेरे को कुछ नही मिलेगा, यह पक्का सिद्धांत मान लें। क्योंकि मैं नित्य हूँ और संसार अनित्य है। संसार से मेरे को कुछ मिल सकता है, यह सोचना ही अज्ञान है। फिर भी संसार को प्राप्त करने के लिए उद्योग करते है रात-दिन। परन्तु जो अपना है और मिल सकता है, उसके लिए उद्योग नही करते। यह एकदम पक्की, सच्ची, सिद्धांत की बात है।

अब एक बात और बतावें। आप ध्यान देकर सुनें, समझें और उसमें शंका हो तो पूछे। मनुष्य के भीतर इच्छा होती है। उस इच्छा के दो भाग होते है। एक होती है कामना [इच्छा] और एक होती है आवश्यकता। उदाहरण के लिए, जैसे भूख लगी तो भूख में खाद्य पदार्थ (भोजन) की आवश्यकता है जिससे प्राण रह सकते हैं। ऐसे ही प्यास में जल की आवश्यकता है। परन्तु कामना या इच्छा क्या

है ? इच्छा है कि भोजन बढ़िया हो, मीठा हो, स्वादिष्ट हो, जल ठण्डा हो, मीठा हो। भूख बातों से नही मिटेगी। वह तो खाने से मिटेगी, परन्तु इच्छा विचार से मिट जाएगी। जैसे अमुक वस्तु स्वादिष्ट है, पर कुपथ्य है। अतः नही खायेगे; क्योकि इससे रोग बढ सकता है। यह तो एक दृष्टान्त हुआ।

मूल में बात यह है कि जैसे शरीर में भोजन की आवश्यकता है, ऐसे ही स्वय को परमात्मा की आवश्यकता है। ससार की तो मात्र इच्छा है, आवश्यकता है ही नही। स्वय को न तो धन की आवश्यकता है, न अन्न की आवश्यकता है, न शरीर की आवश्यकता है, न कुटुम्व की आवश्यकता है, न सग्रह की आवश्यकता है, न भोगो की आवश्यकता है। इस स्वय को परमात्मा की आवश्यकता है। क्योंकि यह परमात्मा का अंश है।

"ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः" ॥

(गीता ॥ १५/७)

इसे परमात्मा के अतिरिक्त और कोई आवश्यकता नही। परन्तु इच्छाओं में इतना फँसा हुआ है कि इच्छा कभी पूरी होती नही, और आवश्यकता जो पूरी होने वाली है, उसे जागृत करता नही, अतः

हरदम दु:ख पाता है। वास्तव मे आवश्यकता एक होती है। भगवान ने कहा है :–"व्यवसायात्मिका बुद्धि:एका"। (गीता २/४१)। अर्थात् निश्चयात्मिका बुद्धि एक होती है।

बहुशाखा ह्यनन्ताश्च बुद्धयोऽव्यवसायिनाम्॥
(गीता २/४१)

परन्तु अव्यवसायियो की बुद्धियाँ अनन्त होती है अर्थात् उनकी अनन्त इच्छाएँ होती है। आवश्यकता क्या है? संसार की इच्छा का त्याग करना और परमात्मा की प्राप्ति करना। परन्तु इच्छाएँ अनेक होती है। जैसे हलुवा मिल जाय, पूड़ी मिल जाय, चटनी मिल जाय, धन हो जाय, परिवार हो जाय, मान, सत्कार मिल जाय आदि। परन्तु आवश्यकता होगी कि पेट भरना है फिर साग-पत्ती ही क्यों न हो। ऐसे ही मनुष्य को आवश्यकता परमात्म तत्व की है, उसके बिना आवश्यकता मिटेगी नही। परन्तु इच्छा कभी मिटेगी नही। ज्यों-ज्यों इच्छा की पूर्ति करेगा त्यों-त्यों इच्छाएँ बढेंगी। इनका कभी अन्त नहीं होगा। इनकी पूर्ति असम्भव है।

इच्छाओं का त्याग और आवश्यकता की पूर्ति करनी होगी। चाहे तो आवश्यकता की पूर्ति कर दो, तो इच्छाएँ मिट जायेगी। चाहे इच्छाओं को मिटा

दो तो आवश्यकता की पूर्ति हो जायगी । दोनो मे से एक कर लो तो दोनो पूरी हो जायेगी । ससार की इच्छाओ का त्याग कर दे तो परमात्मतत्व की प्राप्ति हो जायगी । सर्वव्यापक परिपूर्ण परमात्मा कैसे दूर हो सकते है ? सर्व समर्थ परमात्मा मे हमसे दूर होने की सामर्थ्य नही है । केवल ससार की इच्छा होने के कारण उस सर्वव्यापी परमात्मा की प्राप्ति नही हो रही है । यदि इच्छाएँ सर्वथा मिट जायँ तो उसकी प्राप्ति तत्काल हो जाय ।

उसकी प्राप्ति वह परम लाभ है कि जिसके बाद और कोई लाभ हो सकता है यह मानने मे भी नही आता । और जिसमे स्थित होकर मनुष्य गुरुतर दु:ख से भी चलायमान नही होता .—

यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः ।
यस्मिन्स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते ।।

(गीता ६/२२)

उसकी प्राप्ति होने पर परम शान्ति तथा परम आनन्द ही रहता है । उसमें कोइ फर्क नही पड़ता । मनुष्य इन इच्छाओं के कारण ही दु.ख पाता है । ये इच्छाएँ महान अनर्थ का कारण है । जब तक यह पृथ्वी रहेगी, आप कितने ही विद्वान बन जाओ, कितने ही धनवान बन जाओ, कितने ही बलवान हो

जाओ, कितना ही आदर, मान-सम्मान मिल जाय, आपको इन्द्र और ब्रह्मा का पद मिल जाय तो भी आपको शाँति मिलेगी नहीं। यह एकदम सच्ची बात है सब के लिए। साधू हो चाहे गृहस्थी, भाई हो या बहन। जब तक परमात्मा की प्राप्ति नही होगी, तब तक शाँति मिलेगी नही, तृप्ति होगी नही; क्योंकि अविनाशी की तृप्ति विनाशी संसार से कैसे हो जायगी ? यह असम्भव बात है। यदि आवश्यकता और इच्छा को ठीक-ठीक समझकर आवश्यकता की पूर्ति की जाय तो सब काम ठीक हो जाय। आवश्यकता की पूर्ति अवश्य होनेवाली है और इच्छा निश्चय ही मिटनेवाली है। जैसे बचपन में खिलौनो की इच्छा थी; परन्तु अब होती है क्या ? इसी प्रकार ठीक वैराग्य होने पर रुपयों की आवश्यकता रहती है क्या ? संग्रह भोग की इच्छा रहती है क्या ? तो पुरानी इच्छाएँ मिटती रहती है, परन्तु नई जागृत होती रहती है। इच्छा होती है कि मोटर हो जाय। फिर मोटर रखने को गैरेज होना चाहिए, तेल चाहिए, ट्यूब-टायर, पुर्जे चाहिए आदि। इच्छाएँ बढ़ती ही रहेगी। 'जिमि प्रति लाभ लोभ अधिकाई'। इनका अन्त तभी होगा, जब आवश्यकता की पूर्ति हो जायगी अर्थात् परमात्मतत्व की प्राप्ति हो जायगी

सबसे पहले जितने भाई, बहिन यहाँ है अपने से पूछें कि मैं क्या चाहता हूँ। हममें से बहुत सों को तो इस बात का ज्ञान ही नही है कि हम क्या चाहते है। कोई धन चाहता है, कोई पुत्र चाहता है, कोई मान, आदर चाहता है, परन्तु जिसे कभी चाहते हैं, कभी नही चाहते, वह हमारी असली चाहना नही। हमारी चाहना तो सदा रहेगी, चाहे रात हो चाहे दिन हो, सुख हो अथवा दुःख। सम्पत्ति मिले चाहे विपत्ति मिले। वही हमारी चाह या आवश्यकता है। कामना हमारी चाह नहीं। वह तो शरीर, इन्द्रियों, मन, बुद्धि प्राण की चाह है, हमारी नही है।

अब प्रश्न उठता है कि यह 'ईश्वर अंश जीव अविनाशी। चेतन अमल सहज सुख राशी॥' होकर बँध कैसे गया ? तो इसका उत्तर है कि यह इसलिए बँधा कि इसने संसार की इच्छा को मुख्यता दे दी और परमात्मा की आवश्यकया को भूल गया। यह बात एकदम पक्की और सच्ची है। हमें बहुत सी बाते पुस्तकों से मिली है और इसके सिवाय कभी-कभी बातें स्वयं पैदा हो जाती है। एक बार की बात है कि गीताभवन ऋषिकेश में प्रवचन दे रहा था कि मन में आया कि 'जिमि प्रति लाभ लोभ अधिकाई' यह क्या बात है ? जैसे दस रुपये वाले को सौ रुपये

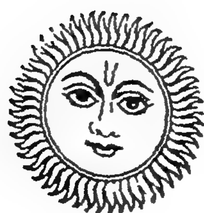
की इच्छा होती है, सौ वाले को हजार की इच्छा होती है, और हजार मिलने पर दस हजार की होती है। तो उत्तर आया कि रुपया स्वीकार करने से रुपये की इच्छा पैदा हुई। रुपये का महत्व अन्तकरण में आया, तब रुपये की इच्छा पैदा हुई। यदि रुपये की इच्छा न करे, तो इच्छा बढ़ेगी नही। ऐसे ही पढ़ाई की इच्छा उसे होती है जो कुछ पढ़ा-लिखा होगा और पढना चाहता है। जो पढ़ा-लिखा नही और पढ़ना नही चाहता, उसको पढ़ाई की चाहना कभी नही होती। उसके पढाई की कमी नही है। पढ़े-लिखे आदमी के ही पढ़ाई की कमी है। इसी प्रकार रुपये पैसों वालो के ही रुपये की कमी है। जिसके पास रुपया है नही और रुपये-पैसो की इच्छा नही है उसके रुपयो की कमी नही खटकती। अतः ससार की इच्छा के कारण ही अभाव और कमी है।

अब प्रश्न है कि अब इस जडता से, इन इच्छाओ से कैसे छूटे ? तो उत्तर है कि मनुष्य का जड़ता से सम्बन्ध है नही, इसने सम्बन्ध मान लिया है। और यह चेतन का जड़ के साथ सम्बन्ध ही अनर्थ का हेतु है। यह मूल बात है। भगवान ने मनुष्य को स्वतन्त्रता

नरक स्वर्ग अपवर्ग निसेनी ।
ज्ञान बिराग भगति सुभ देनी ।।

मनुष्य नरक, स्वर्ग और चौरासी लाख योनियों में जा सकता है ज्ञान, वैराग्य, भक्ति प्राप्त कर सकता है। मनुष्य ने उस स्वतंत्रता का दुरुपयोग किया, इस कारण फँस गया। और यदि अब यह स्वतंत्रता का सदुपयोग करे, आवश्यकता की पूर्ति करे और इच्छाओ का त्याग करे, तो बिल्कुल ठीक काम हो जाय, इसमे किंचितमात्र भी संदेह नहीं।

राम राम राम राम राम



बुद्धि के निश्चय की महत्ता

दूसरे अध्याय के उनतालीसवे श्लोक में भगवान ने कहा है–

एषा तेऽभिहिता सांख्ये बुद्धिर्योगे त्विमां श्रृणु ।

(गीता २/३९)

हे पार्थ ! यह बुद्धि तेरे लिए ज्ञान योग के विषय में कही गई, अब इसको कर्मयोग के विषय में सुन । ज्ञान योग के विषय में अपने स्वरूप के अनुभव की बात कही । कर्मयोग के विषय में निश्चय की बात कही । निश्चय क्या ? कि हमें तो परमात्मतत्व को ही प्राप्त करना है । ऐसा पक्का निश्चय होते ही ससारसे सम्बन्ध-विच्छेद हो गया, बिल्कुल । कैसे ? जैसे आपकी कन्या है । उसका आपके प्रति अपनापन है । उसका आपके प्रति आदर का भाव रहता है। परन्तु वाग्दान-सगाई होने के बाद जितना अपनापन पहले मां-बाप के साथ था, उतना नही रहता । परन्तु वह लड़का जिसे उसने देखा भी नही, उसका नाम नती है तो उसमें अपनेपन का अनुभव करती है। सके घर को अपना घर मानने लगती है । यह भाव

बदलने से ऐसी बात हो जाती है। परन्तु यह संसारी सम्बन्ध तो अस्थिर है। परन्तु हमारा भगवान के साथ सम्बन्ध स्थिर है।

"ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः"

(गीता १५।७)

"इस देह में यह सनातन जीवात्मा मेरा ही अंश है।" अतः जब पक्का निश्चय हो जाय कि हमें तो परमात्मा की ओर ही जाना है तो जो नित्य सम्बन्ध है वह जाग्रत हो जाता है। हम परमात्मा के है और परमात्मा हमारे है, यह सम्बन्ध होते ही भजन, ध्यान, सत्संग, स्वाध्याय स्वतः होगा। भगवान के गुण, प्रभाव, लीला, रहस्य सब अपने मालुम होंगे। संसार की चीजें अपनी नही है। जैसे शरीर का काम करते हैं ऐसे ही संसार का काम कर देना है। जिस प्रकार विवाहित चतुर लड़की माता, पिता भाई आदि के घर आती है तो वहां की ऐसी ठीक प्रकार से संभाल करती है कि पिता, भाई यह समझने लगते हैं कि लड़की यहां पर है, सब संभाल लेगी। वह घर की चीज वस्तुओं की, गाय-भैंस आदि की ठीक प्रकार से सभाल रखती है। परन्तु उन्हे अपना नहीं मानती। ऐसे ही परमात्मा के साथ सम्बन्ध जुड़ने पर. अपनापन मानने पर, मनुष्य ससार की वस्तुओं की ठीक प्रकार से

सार-संभाल करेगा, परन्तु हृदय से यही मानेगा कि ये मेरी नहीं हैं। भगवान के साथ अपनापन मानने में जितना बल है, उतना अन्य साधन में नहीं है।

एक कहानी कहा करते है कि मथुरा के कई चौंवे लोगों ने मथुरा से प्रयागराज कुम्भ जाने का विचार किया। रेल, मोटर, साईकिल, पैदल ऐसे विचार करके अंत में नौका पर जाने का विचार हुआ। यमुना जी उधर बहती है ऐसा विचार करके शाम को भांग घोटकर मस्ती में रात को रवाना हुए। विश्राम घाट से चले, कई आदमी थे। सारी रात नाव चलाई। प्रातःकाल हो गया। शहर दिखाई दिया। पूछा–कौनसा शहर है ? उत्तर मिला–मथुरा। फिर व्याकुल होकर पूछा–कौनसा घाट है ? उत्तर मिला–विश्राम घाट। सोचने लगे कि विश्राम घाट से तो चढे थे, क्या बात हुई ? खोज करने पर ध्यान आया कि नौका का रस्सा खोलना भूल गये। रस्सा खोले बिना नाव कितनी ही चलावे, वहीं के वही रहोगे। ऐसे ही अपनापन संसार से रखोगे तो कितनी ही नौका चलाओ, भगवान की ओर नही पहुँचोगे। परन्तु यदि रस्सा खोल दिया अर्थात् यह स्वीकार कर लिया कि हमारे तो परमात्मा है और हम परमात्मा के हैं, तो यमुना जी स्वतः ही आपको

अपने लक्ष्य की ओर ले जायेगी, अर्थात् स्वतः ही भजन-ध्यान होगा।

मुझे व्याख्यान देते कई वर्ष बीत गए, तब एक बात मन में आयी कि ऐसे ऊँचे-ऊँचे महापुरुष हो गए है, उन्होने शिष्य क्यों बनाए ? उन्हे संसार से जब कुछ चाहना नही, लेना नही, फिर वे शिष्य क्यों बनाते है। तो स्वतः उत्तर आया कि वे अपने लिए शिष्य नही बनाते है। वे शिष्य इसलिए बनाते है कि शिष्य को बतादे कि तुम ससार के नही हो, तुम भगवान के हो। शिष्य जान लेता है कि गुरु महाराज ने बता दिया कि भगवान हमारे है, संसार हमारा नही है। इस अपनेपन मे इतनी शक्ति है कि इसकी जितनी महिमा गाई जाय, उतनी थोड़ी है।

आप थोडा ध्यान देकर सुने तो बात आपकी समझ मे आ जाय। घर में छोटा-सा बालक होता है। यदि वह रात्रि में रोने लग जाय तो घर में माता, पिता, दादी, दादा, ताऊ, चाचा आदि सभी को जगा देता है। सभी कहते है कि बच्चा क्यों रोता है ? औषधि दो, वैद्य को बुलाओ, डाक्टर को दिखाओ। उसके रोने में इतनी ताकत है कि वह सब घरवालों को नचा देता है। किसके बल पर ? अपनेपन के बल पर। घर वाले समझते है कि अपना बच्चा है।

वे उसकी योग्यता, विद्या, बुद्धि, बल, त्याग आदि कुछ नही देखते। इसी प्रकार भगवान जितना अपनेपन को महत्व देते है, उतना भजन, साधन, जप, कीर्तन, तप, योग्यता, अधिकार, आदि किसी को नही देखते। भीतर से यह अटूट सम्बन्ध हो कि हम तो भगवान के है और भगवान हमारे है। इसमें बड़ी भारी ताकत है। एक करोड़पति का लड़का है जो बहुत योग्य नहीं है। और मुनीम है जो बहुत योग्य है, वह दस हजार मासिक वेतन पाता है। लड़का यदि और कहीं जाकर नौकरी करे तो उसे सौ रुपया महीना भी शायद ही कोई दे। सौ रुपये मिलना भी मुश्किल है; क्योंकि योग्यता नही है। परन्तु सेट के मरने पर मालिक योग्य मुनीम नही, अयोग्य लड़का ही बनता है। क्यों ? क्योंकि वह मालिक का अपना है। योग्यता से नौकरी मिलेगी जितनी योग्यता होगी उतनी ही नौकरी मिलेगी। परन्तु मैं भगवान का ही हूँ, भगवान ही मेरे है, संसार मेरा नही, मैं संसार का नहीं हूँ—इस मान्यता के समान कोई योग्यता नही, कोई बल नहीं है।

आप यहां सत्सङ्ग में बैठे है। पर भीतर से सम्बन्ध जुड़ा हुआ है कि घर मेरा है, कुटुम्ब मेरा है, धन मेरा है, यह जो मेरेपन का भाव है यही बन्धन

है। यही सम्बन्ध अगर भगवान से कर ले तो बंधन से मुक्त हो जायें और निहाल हो जायें।

यह जो बात है, इसमें बडी ताकत है। आपका घर, कुटुम्ब, धन जिसे आप अपना मानते है ये अब से सौ वर्ष पहले आपके थे क्या ? और सौ वर्ष बाद आपके रहेंगे क्या ? 'आदावन्ते च यन्नास्ति वर्तमानेऽपि तत्तथा' जो आदि अन्त में नही होता, वह वर्तमान में भी नही होता। ये वास्तव में है नही, केवल दीखते हैं। तो क्या करना है ? इनका सदुपयोग करो। ये सदुपयोग के लिए है। अधिकार जमाने के लिए, कब्जा करने के लिए नही। जैसे हम यहाँ इस बगीचे में रहते है, काम करते है, भोजन करते है, जल पीते है। हमें यह बगीचा रहने के लिए दिया है, कब्जा करने के लिए नही। यदि कब्जा जमाने लगे तो कान पकड़कर बाहर कर दिये जायेंगे। इसी प्रकार यह संसार (अर्थात् धन, सम्पत्ति परिवार, पद आदि) अधिकार जमाने के लिए नही मिला है। अपितु अपना उद्धार करने के लिए, अपना कल्याण करने के लिए मिला है। ये सब ससार की सामग्री आप सदा रखना चाहो, रख सकोगे नही। फिर क्यो इज्जत खोते हो ? मारवाडी शब्दो में–"क्यों माजनो गमावे" केवल वेइज्जती होगी और क्या मिलेगा ?

एक बात और है। उसकी ओर विशेष ध्यान देना है। भगवान के साथ नया सम्बन्ध नही जोडना है। हम सोचते है कि ससार के साथ तो हमारा सम्बंध है; परंतु भगवान के साथ सम्बंध जोड़ेगे। लेकिन भगवान के साथ हमारा सम्बध स्वतः है, केवल भूल गए है। अतः भूल को छोड़ना है। और हमारा जोडा हुआ सम्बन्ध तो संसार से है। अतः उस जोडे हुए सम्बन्ध को छोड़ना है। असली सम्बन्ध को याद करना है कि हम भगवान के है। पूरी गीता का उपदेश सुनाने पर भगवान ने अर्जुन से पूछा कि क्या तूने एकाग्रता से गीता सुनी और क्या तेरा मोह नष्ट हुआ ? तो अर्जुन ने उत्तर दिया "नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा" अर्थात् मोह नष्ट हो गया और पुरानी बात याद आगई, कोई नई चीज नही हुई। क्योकि भगवान के साथ पहले से स्वतः सम्बन्ध है, मै भगवान का हूँ यह बात भूल गया था, अब याद आ गयी।

नारायण नारायण नारायण नारायण

स्वभाव-शुद्धि

मनुष्य शरीर स्वभाव को सुधारने के लिए मिला है। हम पशु, पक्षी, वृक्ष, लता आदि को समझा नहीं सकते कि तुम ऐसा करो और ऐसा मत करो। विधि-निषेध केवल मनुष्य के लिए है। अब प्रश्न है कि स्वभाव मे बिगाड क्या हुआ है ? क्या अशुद्धि है ? तो इसका उत्तर है कि जैसे विजातीय वस्तु लगने से कपडा मैला होता है, ऐसे ही इस मनुष्य के विजातीय द्रव्य लगा है ? अब प्रश्न उठता है कि विजातीय द्रव्य क्या है ? तो इसका उत्तर है कि यह जीवात्मा स्वयं तो है परमात्मा का अश। यह है नित्य एव अविनाशी। परन्तु इसने विनाशी एव अनित्य वस्तुओ के साथ सम्बन्ध जोड लिया, उनको महत्व दिया, उनका आश्रय लिया, वही इसके मैला लगा। इसके कारण अशुद्धि आई। अब इस अशुद्धि को कैसे दूर करें, तो इसका सरल उपाय है कि यदि यह नया मैल न लगावे तो पुराना मैल छूट जायगा। क्योंकि यह स्वय तो है नित्य और मैल है अनित्य। अनित्य नष्ट होता ही है और नित्य सदा रहता ही है।

अब इस नए मल में दो बात मुख्य रूप से आती हैं–एक तो वस्तुओं को ले लूँ अर्थात् उनका संग्रह कर लूँ। और दूसरी उन वस्तुओं के द्वारा सुख भोग लूँ। यह रुपयों का तथा वस्तुओं का संग्रह करना चाहता है और उनसे सुख लेना चाहता है। यह उत्पन्न होने वाले धन तथा नष्ट होने वाले धन तथा पद आदि से अपने को बड़ा मानता है। परन्तु स्वयं तो है नित्य और धन-पद आदि है अनित्य। उत्पन्न तथा नष्ट होने वाली वस्तुओं को महत्व देना ही अपन पतन करना है।

अतः आज से ही विचार कर ले कि उत्पन्न होने वाली तथा नष्ट होने वाली वस्तुओं के द्वारा सेवा करनी है, परन्तु उनसे अपने में बड़प्पन का अनुभव नही करना है। धन आजाय तो बड़ी अच्छी बात और धन चला जाय तो बडी अच्छी बात। धन आजाय तो धन का उपयोग करे और धन चला जाय तो अपनी सेवा करने की जिम्मेदारी नही। इसमें एक विशेष बात है कि हम मैल लगाने में स्वाधीन नही अपितु पराधीन है। परन्तु निर्मल होने में एक दम स्वाधीन है, कोई पराधीन नही है। आज यदि मैं चाहूँ कि लखपति बन जाऊँ, तो उम्र भर संग्रह करके भी लखपति बन जाऊँगा क्या? हम मैल लगाने मे

स्वतन्त्र नहीं है। आप करोड़पति हैं और करोड़ रुपयों को ठोकर मारकर आज ही चल दे तो कौन मना करे! अतः शुद्ध होने में सब स्वतन्त्र है, कोई पराधीन नही।

उत्पन्न तथा नष्ट होने वाली वस्तुओं से पशु, पक्षी, वृक्ष, लता, दूब सभी सुख लेते है। वर्षा होने पर वृक्षो के पत्ते खिल जाते है। लता-दूब हरे हो जाते है। प्रसन्न हो जाते है। परन्तु मनुष्य मे और पशु, पक्षी, वृक्ष, आदि मे एक अन्तर है। मनुष्य की विशेषता है कि वह उत्पन्न होने वाली और नष्ट होनेवाली वस्तुओं को पहचान सकता है। मनुष्य को भगवान ने बुद्धि और विवेक दिया है। अतः इसे चाहिए कि इस विवेक से, उत्पन्न तथा नष्ट होने वाली वस्तुओं को आदर न दे। महत्व न दे। वस्तु को काम मे लाये। जैसे जूती को पहनने के काम में लाते है। उसको सिर पर उठा लेना, उसको महत्व देना, उसका आश्रय लेना गलती है। वह सोचना कि मै बडा धनी हूँ, बलवान हूँ, कीर्तिवान हूँ, बिलकुल गलती की बात है। यह मैल है। अपने को शुद्ध करने के लिए इस मैल को छोड़ना पड़ेगा।

परमात्मा और हम स्वय तो अनुत्पन्न हैं और यह संसार तथा इसकी सामग्री उत्पन्न तथा नष्ट होनेवाली

है । नष्ट होनेवाली का साथ करोगे, तो रोना पड़ेगा ही । इस वास्ते चेत करो ।

अब प्रश्न उठ सकता है कि धन आदि की कामना नही करेंगे तो धन कैसे आयेगा ! इसका उत्तर है कि क्या धन की कामना या इच्छा से धन मिलता है ? क्या इच्छा करने मात्र से भोग मिलते है ? संग्रह तथा भोग की इच्छा का त्याग कर दोगे तो भी जो चीज आनी होगी—वह तो आयेगी ही, और जो नहीं आनी होगी, वह नहीं आयेगी । यह एक दम पक्की और सिद्धांत की बात है । आप यह भी कह सकते है कि सग्रह किए बिना काम कैसे चलेगा ? इसका उत्तर है कि सग्रह को महत्व मत दो । सग्रह की हुई वस्तुओ का सदुपयोग करो । सदुपयोग के लिए मना नही है । और दूसरी बात है कि इस संग्रह से काम कितने दिन चलाओगे ! एक दिन मरना पड़ेगा ही । "राम-नाम सत् है" बोल जायगी । फिर सब काम स्वतः बन्द हो जायेंगे ।

अब एक शंका और हो सकती है कि विधि-निषेध अर्थात् क्या करे और क्या न करे इसका निर्णय कैसे करे ? तो इसका उत्तर भगवान गीताजी के सोलहवे अध्याय के चोबीसवे श्लोक में देते है :

"तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं कार्याकार्य व्यवस्थितौ"

कर्त्तव्य, अकर्त्तव्य की व्यवस्था मे शास्त्र प्रमाण हैं अर्थात् जो शास्त्रो मे करने लिए कहा गया है, वह तो करेंगे और जो शास्त्र में नही करने के लिए कहा गया है, वह नही करेंगे। अपनी इच्छा के अनुसार चलना तो पशु-पक्षियो में होता है। मनुष्य को तो शास्त्र की आज्ञा के अनुसार कर्त्तव्य का पालन करना है। मनुष्य शरीर उत्तम से उत्तम है। अत इसमे उत्तम से उत्तम काम करना है तथा समय का उत्तम से उत्तम उपयोग करना है। अगर संग्रह करने की इच्छा रखोगे और भोग भोगने की इच्छा रखोगे, तो अशुद्धि तथा अपवित्रता आयेगी। अत. शास्त्रों तथा भगवान की आज्ञा के अनुसार करो जिससे अशुद्धि तथा अपवित्रता नही आये।

राम राम राम राम राम

प्रत्येक परिस्थिति सदुपयोग के लिए

हमारे और आपके सबके अनुभव की और बिलकुल सच्ची बात है कि संसार की सभी चीजे प्रतिक्षण बदल रही है और नष्ट हो रही है। आज आपका बचपन का शरीर जैसा था, वैसा है क्या ? बचपन के भाव हैं क्या? बचपन की परिस्थि‍ियाँ और मान्यताएँ आज है क्या ! जिन खेल-खिलौन। को बचपन में सुख की सामग्री मानते थे, आज उन्हें मानते है क्या ! तो बचपन की सारी चीजे बदल गई, पर आप वही है जो बचपन में थे। इससे सिद्ध हुआ कि आप तो रहने वाले है, अविनाशी है और ये ससार की वस्तुएँ बदलने वाली है , विनाशी है। अतः अविनाशी होकर विनाशी के साथ रहना गलती की बात है। मैं आपसे यह नही कहता कि घर छोड़ दो, परिवार छोड़ दो, धन छोड़ दो, वस्तु छोड़ दो। परन्तु यह कहता हूँ कि इनका आश्रय मत लो। इनका भरोसा मत करो। क्योंकि आप तो रहनेवाले है, और ये रहने वाली है नहीं। इन जाने वाली चीजों से काम कैसे चलाओगे! यह शरीर, यह कुटुम्ब, यह धन, यह मान-आदर सब

नष्ट होनेवाले है । रहनेवाले तो परमात्मा है । अत. उन्ही का आश्रय लो, उन्हीं की शरण लो ।

बहुत बड़े आश्चर्य तथा दुःख की बात है कि जिस जीवन से परमात्मतत्त्व की प्राप्ति कर ली जाय, जीवन्मुक्ति प्राप्त हो जाय, प्रभु-प्रेम प्राप्त हो जाय, भगवान मनुष्य के सामने खेलने लगे और मनुष्य के दास बन जायँ, इतना अधिकार दिया है, वही जीवन हम नाशवान् चीजो के संग्रह में और सुख-भोग मे नष्ट कर रहे है । ये धन, सम्पति, कुटुम्ब, परिवार आदि नाशवान् है, रहने वाले नही है । इन चीजों में समय बरबाद करके हम प्रभु प्राप्ति रूपी महान् लाभ से वंचित रह रहे है, जिसके लिए प्रभु ने कृपा करके मानव शरीर दिया है । हर एक भाई को सोचना-समझना चाहिए कि हमें मनुष्य शरीर मिल गया, 'सबसे दुर्लभ मनुष्य देही', वह भी भारत वर्ष में जन्म मिल गया । फिर कलियुग में, जिसमे प्रभु प्राप्ति अति सरल है । उसमें भी गीता जैसा ग्रन्थ, भगवान् का नाम, सत्चर्चा तथा सत्संग करने का सुन्दर मौका मिल गया । क्या राज्य, वैभव, सम्पति से ऐसा मौका मिल सकता है ? फिर किस दिन की प्रतीक्षा में बैठे हो ? किसके भरोसे निश्चित बैठे हो ? वह कौन सी ऋतु; कौन-सा वर्ष, कौन-सी परि-

स्थिति आयेगी जिससे अपना कल्याण करोगे ? हम सोचते है कि बेटे, पोते बडे हो जायँ, वे कारोबार सम्भाल ले तो फिर करेंगे। परन्तु शरीर का पता नही कि कब 'राम राम सत्' हो जायेगा। अत. असली काम (प्रभु-प्राप्ति) अपना कल्याण कर लेना चाहिए। ये ससार के काम लेना-देना, कारोबार आदि तो बेटा-पोता भी कर लेंगे। कोई वंश में नही होगा तो और कोई राज्य संभाल लेगा। और यह काम नही चलेगा तो भी आपका कोई हर्ज नही है। परन्तु पीछे आपका उद्धार कौन करेगा ?

मानव शरीर पाकर यदि भगवान का भजन न करे तो उसके समान हानि नही है। और उस हानि को हम सह रहे है। अतः सच्चे हृदय से लगन लग जानी चाहिए कि हमें तो अपना कल्याण करना ही है। जब तक न हो जाय तब तक चैन न पड़े; क्योंकि मानव शरीर मिला ही कल्याण के लिए और इसका कोई आशय नहीं है। यह संसार जो अपना दीखता है यह अपने साथ रहेगा नहीं। इस बात को आप सोच लें—

वे बड़े बड़े महाराजे
जिनके बजे रात दिन बाजे
वे भी बने काल के खाजे

मिले नहीं बारम्बार शरीर, क्यों गफलत में खोते हो ?

अतः मानव शरीर में प्रभुप्राप्ति का, अपने कल्याण का मौका मिला है, इसे मत चूकने दो, अन्यथा धोखा होगा, धोखा। बेचारे मनुष्य को खाने-कमाने से फुसरत ही नहीं मिलती। परन्तु चिंता नही है कि मानव शरीर क्यों मिला। मैने कलकत्ते में एक भाई से पूछा एकान्त मे, कि आपके पास लाखों, करोड़ों रुपये है, आप उम्र भर बैठे-बैठे खाओ तो भी खर्च होगा नही। फिर आप उत्तर दो कि और कमा-कर क्या करोगे ? सज्जन आदमी थे। बोले—'स्वामीजी इसका उत्तर हमारे पास नही है।'

यह हालत है। तो करना क्या है ? धन का सदुपयोग करना है। बड़े-बूढ़ों की सेवा करो। रोगियो की सेवा करो। गायो की सेवा करो। महत्त्व वस्तु का नही है, वस्तु के उपयोग का है। मानव शरीर के भी उपयोग की महिमा है—

'नरक स्वर्ग अपवर्ग निसेनी'

इस मानव शरीर से नरक, स्वर्ग या मोक्ष कुछ भी प्राप्त कर सकते है। इसी प्रकार धनवत्ता का, निर्धनता का, रोग का, निरोगता का, मान का, अपमाप का, निन्दा का, स्तुति का, सम्पत्ति का, विपत्ति का, शांति और कलह का, प्रतिकूलता-अनुकूलता सबका सदुपयोग

और दुरुपयोग किया जा सकता है । सदुपयोग से होता है कल्याण और दुपपयोग से होता है पतन । अत. जो समय, समझ, सामग्री, सामर्थ्य, शक्ति अपने पास है, उसका सदुपयोग करो । उससे अधिक की आवश्यकता नही है । जो हमारे पास है ही नही, उसकी भगवान हम से कैसे आशा करेगे ? एक छोटा बालक है । आप उससे ढाई मन बोरा उठाने की आशा करते है क्या ? जब आप ही इतने ईमानदार है कि बालक से वही आशा करते है जितना वह कर सके, तो फिर क्या भगवान हमसे वह आशा रखेगे जो हम नही कर सकते ? क्या भगवान आप जितने भी दयालु नही है, या आप जितने भी जानकार नहीं है ?

इसमें एक बात की ओर विशेष ध्यान दें । वह यह है कि आप अनुकूल परिस्थिति तो चाहते है, और प्रतिकूल परिस्थिति नही चाहते है । परन्तु यदि विचार करें तो पता चलेगा कि प्रतिकूल परिस्थिति जितनी लाभदायक है, उतनी अनुकूल परिस्थिति लाभदायक नही हो सकती । अनुकूल परिस्थिति में आदमी फॅसता है । प्रतिकूल परिस्थिति में ऊँचा उठता है, उसे वैराग्य होता है, त्याग करने की मन में आती है । अतः प्रतिकूल परिस्थिति आ जाय तो हमें खुशी मनानी चाहिए । भागवत में श्लोक आया है कि जिस

पर मै कृपा करता हूँ 'हरिष्ये तद् धनं' उसका धन हर लेता हूँ, 'करोमि बन्धु विच्छेदं' और कुटुम्ब से सम्बन्ध-विच्छेद कर देता हूँ। 'स दुःखेन जीवति' वह दुःख पूर्वक जीता है तो वह ससार से उपराम हो जाता है, और प्रभु की शरण हो जाता है– दूसरी बात यह कि अनुकूल परिस्थिति में पुण्य नष्ट होते है और प्रतिकूल परिस्थिति में पाप नष्ट होते है, अतः प्रतिकूल परिस्थिति में आनन्द मनाना चाहिए कि बड़ी भारी कृपा हो गई। यह बात बिल्कुल सच्ची और सिद्धांत की है। आप स्वयं विचार करे। कोई भी व्यक्ति और कोई भी परिस्थिति आपके बाधक नहीं हो सकती। आप स्वयं ही अपने बन्धु तथा स्वयं ही अपने शत्रु है।

आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः

(गीता ६।५)

मनुष्य आप ही अपना मित्र और आप ही अपना शत्रु है। और कोई न तो शत्रु है, न मित्र है। परिस्थिति का यदि सदुपयोग करें, तो वही परिस्थिति उद्धार करने वाली हो जाती हैं। उदाहरण के लिए ध्रुवजी का दृष्टान्त है, ध्रुवजी से द्रोह रखनेवाली माँ सुरुचि, प्यार करनेवाली माँ सुनीति और उदासीन नारद बाबा तीनों ही कल्याण में सहायक बने। अतः जो

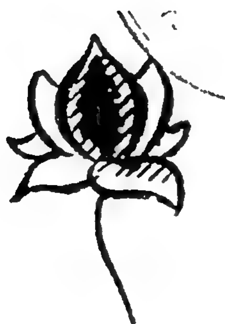
परिस्थिति प्राप्त हो, उसका पूर्ण सदुपयोग करो। यह मत सोचो कि अनुकूल परिस्थिति आयेगी, तब भजन करेंगे, पैसा कुछ हो जाय, तब भजन करेंगे, छोरा काम सम्भाल ले, फिर भजन करेंगे। फिर नही होगा। किसी का हुआ नहीं।

एक कथा आती है कि जब रावण मर रहा था, तब भगवान राम ने लक्ष्मणजी से कहा—'आज एक बड़ा विद्वान्, एक बड़ा नीतिज्ञ, जिसने वेदों पर भाष्य आदि लिखे हैं, वह जा रहा है। अतः उससे कोई लाभ लेना चाहो तो ले लो।' लक्ष्मणजी जाकर रावण के सिर की तरफ खड़े हो गये और पूछा कि तुम्हारे जीवन का क्या सार है—यह बताओ, लक्ष्मणजी सिर की तरफ खड़े थे, इस कारण रावण बोला नही। फिर भगवान् राम के कहने से लक्ष्मणजी रावण के पैरों की तरफ जाकर खड़े हो गये। तब रावण बोला—'तपस्वी एक बात है कि जो काम करना है, उसे जल्दी ही कर लेना चाहिए। मेरा विचार था कि चन्द्रमा को निष्कलंक कर दूँ और चन्द्रमा रोजाना पृथ्वी पर उदय हो। अमृत लाकर समुद्र का जल मीठा कर दूँ। स्वर्ग तक सीढ़ी लगा दूँ जिससे वहाँ कभी भी आ-जा सके। अग्नि का धुँआ मिटा दूँ। ऐसा विचार था, परन्तु कर नही सका। इस वास्ते

जो काम करना हो, शीघ्र कर लेना चाहिये ।'

अतः प्रत्येक अनुकूल या प्रतिकूल परिस्थिति, जो भी आपको प्राप्त है, उसका सदुपयोग करोगे तो वह आपके कल्याण में सहायक हो जायगी ।

राम राम राम राम राम



श्रीमद्भगवद् गीता की महिमा

उन्नति क्या है ? भगवद्गीता के छठे अध्याय के बाईसवें श्लोक में आया है—

यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः।
यस्मिन्स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते ॥

(गीता ६।२२)

जिस परमात्मा की प्राप्तिरूप लाभ को प्राप्त करके उससे अधिक दूसरा कुछ भी लाभ नही मानता और जिस परामात्मा की प्राप्ति रूप अवस्था में स्थित होकर बड़े भारी दुःख से भी बिचलित नही होता। यह श्लोक मनुष्य की उन्नति की पहचान का थर्मामीटर है। इसका अर्थ हुआ कि अब मेरे को कुछ मिल जाय, यह मनुष्य की इच्छा नही होती। और दूसरी बात है कि दुःख उसे स्पर्श ही नहीं करता। इसका तात्पर्य हुआ कि मरने का भय, जीने की इच्छा, पाने की लालसा—सब मिट जाते है और करने को कोई काम बाकी नहीं रहता । तब समझना चाहिए कि मनुष्य जीवन में आकर हमने उन्नति की और जीवन सफल हो गया। परन्तु जब तक मरने

का भय रहता है तब तक समझना चाहिए कि जो काम करना चाहिए था, वह नही किया है। जानने लायक को नही जाना है, पाने लायक को नहीं पाया है और हमारा मनुष्य जीवन सफल नही हुआ है।

स्कूल में पढ़ते समय अनुभव किया होगा कि यदि पाठ याद होता है तो निरीक्षण के लिए या परीक्षा के लिए कोई आता है और आपसे पूछता है तो इसमें आपको आनन्द आता है। परन्तु किसी छोरे को पाठ याद नही होता, तो वह छोरा पीछे को हो लेता है कि कही मेरे से न पूछले। ऐसा भय लगता है। भय क्यो होता है? भय इसलिए होता है कि जो पढ़ाई की है वह ठीक नही की। ऐसे ही यह मानव शरीर ब्रह्म-विद्या का अध्ययन करने के लिए मिला है। यदि मनुष्य को मरने का भय, जीने की इच्छा होती है तो इसका अर्थ है कि उसने ठीक प्रकार से ब्रह्म-विद्या का पूरा अध्ययन नही किया। जब यह अध्ययन पूरा हो जायगा तो मरने का भय और जीने की इच्छा नही रहेगी। फिर जीते रहें तो आनन्द, मर जायँ तो आनन्द, कोई चिंता नही, कोई इच्छा नहीं, कोई भय नही। फिर न जानना बाकी रहता है, न प्राप्त करना बाकी रहता है और न करना बाकी रहता है। इन चीजों का तो खाता ही

उठ जाता है। यह बात मैं आपसे सच्ची कहता हूँ। यह मेरी व्यक्तिगत बात नहीं है। मेरे घर की बात नहीं है। यह सन्तों की, शास्त्रों की, भगवद्गीता की बात है।

मनुष्य में एक करने की, एक जानने की और एक पाने की—तीन शक्तियाँ स्वाभाविक है। मनुष्य जब तक अपने लिए करता है तब तक वह कृतकृत्य नहीं होता। परन्तु जब करने लायक काम कर लेता है तब मनुष्य कृतकृत्य हो जाता है अर्थात् उसे कुछ भी करना बाकी नही रहता। ऐसे ही चाहे मनुष्य को कितनी ही भाषाओं की जानकारी हो जाय, वह कितना ही विद्वान् हो जाय, जब तक वह स्वयं अपने आपको नही जानता, तब तक जानना बाकी रहेगा। परन्तु जब अपने आपको ठीक-ठीक जान लेगा, फिर जानना बाकी नही रहेगा। इसी प्रकार पाना कब तक बाकी रहता है? जब तक कि प्रभु-दर्शन प्रभु-प्रेम की प्राप्ति न हो जाय। जिस समय सर्वोपरि परमात्मा मिल जायें, उनके दर्शन हो जायँ, उनका प्रेम प्राप्त हो जाय, तत्व का बोध हो जाय, फिर पाना बाकी नहीं रहेगा। और ये तीनी बातें मनुष्य जन्म में हो सकती है। भगवद्गीता से, सन्तों की वाणी से और सत्संग से मुझे इस बात का पता चला

है कि इसके लिये मनुष्य मात्र अधिकारी है, चाहे वह हिंदू-मुसलमान, बौद्ध, पारसो, ईसाई कोई भी हो। किसी भी सम्प्रदाय का हो, वैष्णब, शैव, शाक्त, जैन, सिख आदि कोई क्यों न हो। मेरे सत्सग में मुसलमान भी आते है, आर्य-समाजी भी आते है। आर्य-समाजियों ने मुझे बुलाया है, मै गया हूँ। बहुत से सम्प्रदायों में मेरा जाने का काम पड़ता है। मेरी बात किसी सम्प्रदाय के, किसी मजहब के विरुद्ध नही होती। जैसे माँ सब बच्चो को प्यार से दुलारती है, रखती है, उदारता से दूध पिलाती है—ऐसे ही हम सब परमात्मा के बच्चे है। अतः उस परमात्मा रूपी माँ का मस्ती से, आनन्द से दूध पीएँ। 'दुग्ध गीतामृतं महत्'। यह बड़ा विलक्षण दूध है जितना पीओगे, उतनी ही आपकी पुष्टि होती चली जायगी। जब गीता रूपी दूध पीने में रस आने लगेगा, तो निहाल हो जायेंगे।

गीता एक विलक्षण ग्रन्थ है। इसमें केवल सात सौ श्लोक है। परन्तु इसमें अलौकिक तत्त्व भरा है। इसकी संस्कृत सरल है। हम सब इसे पढ़ सकते है, याद कर सकते है और काम में ला सकते है। इनमें नई-नई बाते मिलती है। पहले भले ही आरम्भ में यह सोच ले कि मैने तो अब गीता पूरी पढ़ ली और

मे जानकार हो गया। परन्तु जैसे-जैसे इसमे गहरे उतरोगे वैसे-वैसे पता लगेगा कि मै तो बहुत कम जानता हूँ। इसमें नित्य नये-नये विचित्र भाव मिलते हैं। मुझे पाठ करते-करते गीता याद हो गई। मैंने सीधा पाठ किया। फिर उल्टा पाठ 'यत्र योगेश्वर कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः' से 'धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे……' तक बिना गीताजी देखे एकान्त मे बैठकर किया, बड़ा विलक्षण आनन्द आया केवल पाठ मात्र करने से। आप करके देखे। उल्टा पाठ करने से श्लोकों पर विशेष ध्यान जाता है और श्लोकों के अर्थ का विशेष ज्ञान होता है और बहुत शान्ति मिलती है। धन, विद्या, परिवार, मान, आदर आदि प्राप्त करके आप भले ही अपने को बड़ा मान ले, परन्तु बड़े नही बनते। आप अविनाशी, इन विनाशी चीजों से क्या बड़े बनेंगे। परन्तु गीता का अध्ययन करके आप सर्वोपरि हो जायेंगे। आपको परम शान्ति मिलेगी। इनमें सन्देह नहीं।

एक वैश्य भाई ने मेरे को बताया कि हम तो मानते थे कि गीता अच्छी है, परन्तु याद करने पर मालूम पड़ा कि बड़ी विलक्षण है। आप स्वयं अध्ययन करके, इसके भीतर प्रवेश करके देखे कि इस छोटे से ग्रन्थ में कितने विचित्र तथा विलक्षण भाव हैं। इसके

भीतर प्रवेश करके आप अविनाशी परमात्मतत्त्व को प्राप्त कर लोगे ।

"यं लब्ध्वा चापय लाभं मन्यते नाधिकं ततः"

फिर उस लाभ को प्राप्त करके न कुछ करना बाकी रहेगा, न कुछ जानना बाकी रहेगा । ऐसा होने पर फिर जीने की और कुछ करने की इच्छा नही रहती और मरने का भय नही रहता । मनुष्य कृत-कृत्य हो जाता है, प्राप्त प्राप्तव्य हो जाता है । ज्ञात ज्ञातव्य हो जाता है । पूर्णता हो जाती है और मनुष्य जन्म सफल हो जाता है ।

नारायण नारायण नारायण नारायण

संत-महापुरुषों के उपदेश के अनुसार अपना जीवन बनाना ही उनकी सच्ची सेवा है !

वास्तविक सम्बन्ध प्रभु से

भगवद्गीता के पन्द्रहवे अध्याय के सातवे श्लोक में आया है –

ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः।
मनःषष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति ॥

(गीता १५/७)

यह श्लोक विशेष रूप से अपने काम का है। भगवान कहते है 'मम एव अशः'—यह जीवात्मा मेरा ही अंश है। और 'मन· षष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि' मन सहित इन्द्रियाँ प्रकृति में स्थित है। इन दो बातो से यह अर्थ निकला कि मेरा अंश जीवात्मा मेरे में स्थित है और प्रकृति का अश 'मनः षष्ठानीन्द्रियाणि' शरीर प्रकृति में स्थित है। परन्तु परमात्मा का अंश होने पर भी जीवात्मा परमात्मा को प्राप्त क्यों नही करता ? इसका उत्तर है कि यह तो परमात्मा का अंश; पर इसने पकड़ा है विजातीय प्रकृति की वस्तुओ को, यही बन्धन है। यदि यह विजातीय वस्तुओ का त्याग कर दे तो आज ही -मुक्त है। प्रकृति और

प्रकृति का कार्य हमारी वस्तु नहीं है। इनको हमने अपना मान लिया है। अतः हम बँधे है। यदि आज ही इनको अपना न मानें, तो मुक्त हो गये। मुक्त उसी से हो सकते हैं जो हमारी चीज नही है। सूर्य प्रकाश और उष्णता से कैसे मुक्त हो सकता है ? वह तो उसका स्वरूप है ऐसे ही हम अपने स्वरूप से कैसे मुक्त हो सकते है ? हमें प्रकृति और प्रकृति के कार्य जो हमारे नही है; पर जिन्हें हमने अपना माना है, उनसे मुक्त होना है। और प्रभु जो हमारे है, उनके भक्त होना है। जो हमारी चीज है नहीं, उसे छोडने में क्या बाधा है ! संसार से विमुख हो जायँ तो हो गये मुक्त। और भगवान् के सम्मुख हो जायँ अर्थात् भगवान् हमारे और हम भगवान् के—यह मान लिया तो हो गये भक्त। जब तक ससार को पकडे रहोगे तब तक प्रभु को नही पकड़ सकते।

इसमें एक बात समझने की है कि चाहे आप संसार को कितना ही पकडो, आप ससार के साथ एक नहीं हो सकते। इसका कारण है कि संसार अर्थात् प्रकृति और प्रकृति कार्य का जड़ है और आप परमात्मा के चेतन अश है। अतः आप (चेतन) की एकता जड ससार से न होकर चेतन परमात्मा से होगी। इस बात को आप हृदय से स्वीकार कर ले।

एक दूसरी बात और समझने की यह है कि जड़ के साथ सम्बन्ध-विच्छेद होना सुगम है, क्योंकि जड से सम्बन्ध-विच्छेद प्रतिक्षण हो रहा है। शरीर, धन, कुटुम्ब सभी विनाश की ओर जा रहे हैं। पहले आप अपने को बालक समझते थे, अब नही समझते। उस समय जो परिस्थिति विचार थे, घटनाएँ थी सब बदल गयी और प्रतिक्षण बदल रही है। अतः ससार के सम्बन्ध का त्याग कर दे। त्याग करना क्या? कि इनको अपना न माने। परन्तु परमात्मा को अपना माने, क्योंकि हम चेतन है और चेतन परमात्मा के अंश है। परमात्मा को हम छोड नहीं सकते और परमात्मा हमें नही छोड़ सकते। उनकी विस्मृति हो सकती है। उनसे विमुखता हो सकती है। अतः मान ले कि "मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोई।" इसमें क्या कठिनता है? बस, मान ले। आज और अभी, कि भगवान् मेरे है और मै भगवान् का हूँ और संसार मेरा नही है और मैं संसार का नही हूँ। परन्तु जो सामग्री, शक्ति, सामर्थ्य हमें संसार से मिली है, वह संसार की सेवा में लगानी है। प्रह्लाद जी का दृष्टान्त हमारे सामने है। उनका शरीर पिता के अंश से उत्पन्न था। अतः शरीर उन्होंने पिताजी को दे दिया। वे शरीर को कष्ट दे, जहर पिलावें, सांप

ड़ंसवाबे, पर्वत से गिरायें, समुद्र में डूबाये, कुछ भी तो प्रह्लाद जी ने चूँ नहों की। शरीर मर जाय क्या ? क्योंकि यह माता-पिता और संसार का है। यं परमात्मा का अश है। अत. अपने आपको मात्मा को दे दे।

मैं आपको एक विशेष बात और बताता हूँ। यह स्त्रों में है, पर छिपी हुई है। यह मुझे सन्त-हात्माओ की कृपा से मिली है। यह विचित्र बात कि प्रायः सत्संगियो की तथा साधकों की यह ान्यता रहती है और मेरी भी पहले यही आदत थी, क साधारण संसार की वस्तुएँ भी बड़े परिश्रम से, यास से मिलती है फिर भगवान् की प्राप्ति कैसे ुगमतापूर्वक हो सकती है। भगवान् की प्राप्ति के लिए बड़ा त्याग, बड़ी तपस्या, बड़ा सयम करना ड़ेगा। बड़े-बड़े योगियों को जन्म-जन्म भर यत्न करते हुए भी प्राप्ति नही होती, फिर हमें कैसे होगी। कलियुग है, फिर इसमे प्रभु प्राप्ति कैसे होगी। इस प्रकार की मान्यताओं से हम प्रभु प्राप्ति में स्वयं बाधा लगा लेते है। ये मान्यताएँ बिलकुल गलत है। हम परमात्मा के है परमात्मा हमारे है। संसार हमारा नहीं है, हम संसार के नहीं है। इस बात को आप हृदय से मान ले, तो साधन बहुत सुगम हो जाता है।

आप यह बात मान लो कि परमात्मा के साथ हमारा सम्बन्ध अखण्ड है, अटूट है, नित्य है, निर्विकार है, आपको प्रभु प्राप्ति हो जायगी, क्योंकि प्राप्ति तो है, केवल विस्मृति हुई है।

भगवान स्वयं कहते है–

न वेदयज्ञाध्ययनैर्न दानैर्न च क्रियाभिर्न तपोभिरुग्रैः।

(गीता ११/४८)

नाहं वेदैर्न तपसा न दानेन न चेज्यया।

(गीता ११।५३)

मै वेद, यज्ञ, दान, तप, आदि साधनों से प्राप्ति नहीं हो सकता। जड़ शरीर रूपी - साधन के द्वारा चेतन की प्राप्ति कैसे होगी ? परन्तु साधारणतया व्याख्यानों में, उपदेशों में यही सुनने को मिलता है कि प्रभु प्राप्ति अति कठिन है। अतः इसके विपरीत सुनना नही चाहते। हम तीर्थयात्रा मे नाथद्वारा गये। वहाँ मैंने व्याख्यान दिया। उसमें यह कह दिया कि भगवान् के शरण होना यह है कि भगवान के शरण होना ही नही। क्योंकि भगवान की शरण तो हम सदा ही है, केवल पता नही था, इस बात का। भगवान ने तो शरण ले रखा है। ऐसा कह दिया। तो वहाँ के लोगों ने समझा कि मै शरणागति का विरोध कर रहा हूँ। मेरी वैसी भावना नही थी।

मैंने तो वास्तविक बात कही। जब हम मंत्र लेते है तो गुरुजी हमें यह बता देते हैं कि हमारा भगवान के साथ सम्बन्ध है। वास्तव में भगवान् के साथ हमारा सम्बन्ध नित्य है, अटूट है और संसार तथा शरीर के साथ हमारा सम्बन्ध है नही, केवल हमने मान लिया है। भगवान् से हम विमुख हुए है और संसार के सम्मुख हुए है। भगवान हमारे है तथा हम भगवान के है यह विस्मृति हुई है। परन्तु संसार तथा शरीर का सहारा लिया है, उनकी शरण हुए है। यह सहारा रहने वाला नही है। शरीर और संसार के सहारे को कब तक पकड़े रह सकोगे ? यह छूटेगा आप कितना ही पकड़ने की कोशिश करो, पकड़ सकोगे नही। परमात्मा को आप छोड़ सकते नहीं, परमात्मा के साथ हरदम है और आपके साथ परमात्मा हरदम है। केवल विस्मृति हुई है, भूल हुई है। गीताजीका उपदेश सुनाकर भगवानने अर्जुनसे पूछा कि क्या इस गीताशास्त्रको तूने एकाग्र चित्त से श्रवण किया और क्या तेरा अज्ञान जनित मोह नष्ट हो गया ! तो अर्जुन बोले—

"नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा"—मोह नष्ट हो गया और स्मृति हो गयी। याद आ गई कि मै भगवान का हूँ और भगवान मेरे है, इसमें कोई नया ज्ञान

नहीं हुआ। हम भगवान के हैं, संसार के नहीं। हमारा कहा जाने वाला हमारे पास जो कुछ है, शरीर, धन, बल, बुद्धि, योग्यता आदि यह सब कुछ संसार से लिया है, इसे संसार की सेवा में लगा दो। उससे अपनापन उठा लो और उनसे आशा मत करो, तो आप मुक्त हो गए। भगवान् हमारे है और हम भगवान के है तो यह भक्ति हो गई। इसमें देरी का काम नही है। बस सरल बात है।

नारायण नारायण नारायण नारायण



अधिकार संसार पर नहीं परमात्मा पर

हम सब का परमात्म तत्व की प्राप्ति में अधिकार है। ससार की वस्तुओं पर हमारा अधिकार नहीं है। परिवार, कुटुम्ब, जमीन, जायदाद, शरीर, इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि, प्राण–इन पर हमारा अधिकार नहीं है। गीताजी में भगवान कहते है :–

ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः।

(गीता १५/७)

और गोस्वामी जी महाराज की वाणी में भी आता है–

ईश्वर अंश जीव अविनाशी।
चेतन अमल सहज सुखराशि॥

इस प्रकार भगवान् और भक्त दोनों जीव को ईश्वर का अंश मानते है। वास्तव में देखा जाय तो ये दो ही अर्थात् भगवान और उनके भक्त ही बिना स्वार्थ के प्रीति करने वाले हैं। अन्य तो सब स्वार्थ वश प्रीति करते है।

हेतु रहित जग-जुग उपकारी।
तुम्ह तुम्हार सेवक असुरारी॥

स्वारथ मीत सकल जग माही ।
सपनेहुँ प्रभु परमारथ नाही ॥
सुर नर मुनि सब कै यह रीति ।
स्वारथ लागि करे सब प्रीती ॥

जीवात्मा भगवान का अंश होने के कारण हमारा अधिकार भगवान पर चल सकता है । परन्तु प्रकृति और प्रकृति के पदार्थों पर अधिकार नहीं चल सकता । इन्हें प्राप्त करने के लिए योग्यता, समय, परिश्रम, बल, बुद्धि, विद्या आदि चाहिए । जैसी-जैसी योग्यता होगी, वैसे-वैसे अधिकार प्राप्त होगे । परन्तु भगवान की प्राप्ति में किसी योग्यता, बल, बुद्धि, विद्या आदि की आवश्यकता नहीं है । बच्चा दूसरी किसी वस्तु पर अधिकार जमा ले तो उसके हाथ में नही है । परन्तु वह अपनी माँ पर तो अधिकार जमा ही सकता है । बालक स्वाभाविक ही माँ की गोद चढ़ जाता है और बड़ा भाई गोद में हाथ भी रख देता है तो उस हाथ को हटा देता है कि मेरी माँ है तू मेरे हुक्म बिना हाथ कैसे रख सकता है ? ऐसे ही भक्त कहता है :–'ना मैं देखूं और को, ना तोय देखन देऊं–' भगवान ! मैं और की तरफ देखूंगा नहीं और आपको भी और तरफ देखने नहीं दूंगा ।

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम् ।

(गीता ४/११)

भगवान् कहते है कि जो मुझे जैसे भजता है, मै भी उसे वैसे ही भजता हूँ । अतः भगवान् हमारे है और हम भगवान् के हैं । हम भगवान् से कभी वियुक्त हो नही सकते, बिछुड़ नही सकते । परन्तु संसार हमसे प्रतिक्षण वियुक्त हो रहा है । यदि संसार, शरीर, इन्द्रियाँ, मन, धन-सम्पत्ति आदि अपने है तो शरीर, इन्द्रियों को दुर्बल मत होते दो, भोगों में मत फसने दो, मन को इधर-उधर मत जाने दो, करोड़पति, अरबपति बन जाओ । तो कहते है यह हाथ की बात नही है ।

भगवान् हमारे है और हम भगवान् के है । चाहे कपूत (कुपुत्र) हों या सपूत (सपुत्र) । कपूतपना क्या है ? संसार को अपना मानना कपूतपना है । (सपूतपना क्या है ? भगवान् को अपना मानना और संसार को अपना न मानना सपूतपना है ।) इस वास्ते भगवान् ने अव्यभिचारी भक्तियोग के द्वारा भजने की बात कही–

"मां च योऽव्यभिचारेण भक्तियोगेन सेवते"

(गीता १४/२६)

अव्याभिचारिणी भक्ति क्या ? संसार अपना नही है, मैं संसार के साथ नहीं हूँ । और संसार को अपना

मानना व्यभिचार है। अपना संसार नही, अपने तो भगवान् है। भगवान् की प्राप्ति को असम्भव या कठिन मानना गलती है। इसमें बाधा हैं धन तथा पदार्थों के संग्रह की तथा सुख भोग की चाहना–यह माया है। इस माया में यह तोते और बन्दर की तरह बन्धा हुआ है :–

सो माया बस भयउ गोसाई।
बँध्यो कीर मरकट की नाईं॥

एक तोता पकड़ने वाला जंगल में तोता पकड़ता था। उसने एक पानी की गहरी कुड़ी बनाई थी। उस पर आड़ी लकड़ी रखी हुई थी। उस पर ज्यों ही तोता बैठे कि उल्टा हो जाय। अब नीचे देखे तो पानी और चारों ओर दिवार। उसे लगता है कि फँस गया। उस लकड़ी को वह तोता छोड़ता नही। इतने में आकर तोता पकड़ने वाला उसे पकड़ लेता है। यह दृश्य देखकर एक सन्त को दया आ गई तो उन्होंने एक तोता लिया ओर उसे पढ़ाया–देखो तोता, जहाँ जल की ऐसी कुण्डी हो, वहां नही जाना। तो तोते ने भी ऐसा ही याद करके कह दिया। फिर सन्त ने कहा कि बीच डंडे पर मत बैठना। तोते ने यह भी याद कर लिया फिर सन्त ने कहा कि बैठ जाओ तो उड़ जाना। तोते ने भी वैसा कह दिया। लटक जाओ तो

भी उड जाना, बन्धन नही होगा । तोते ने वह भी वैसा ही कह दिया । सन्त ने ऐसा सिखा कर तोते को छोड़ दिया । उस तोते ने और कई दूसरे तोतों को भी यह पढ़ा दिया । सन्त ने देखा कि अब तोते नही फँसेंगे। फिर एक दिन तोता पकड़नेवाले ने जल की कुण्डी रखी तो तोता वहां डंडा पर बैठ गया । 'जल की कुण्डी पर नहीं बैठना है' ऐसा मुंह से सारी बात कहते-कहते तोता पकड़ लिया गया ।

इसी प्रकार हम लोग भी सन्त की बताई हुई बात सुनकर मुख से कहते रहते है; परन्तु आचरण नहीं करते ।

ऐसे ही बन्दर को पकड़ने वाले छोटे मुँह के घड़े में चने रख देते हैं । बन्दर आता है और दोनों हाथ घड़े में डाल कर चनों से मुट्ठी भर लेता है । बंधी हुई मुट्ठी वह घड़े के छोटे मुंह से बाहर नहीं निकाल सकता और चने छोड़ना भी नही चाहता । इस प्रकार बन्दर और तोता दोनों खाने-पीने में बँधते हैं। ऐसे ही हम लोगों की, पढे-लिखों की दशा है कि हम भी यह बोलते रहते हैं कि—

ईश्वर अंश जीव अविनासी ।
चेतन अमल सहज सुख रासी ।।

सो माया बस भयउ गोसाँई ।
बँधयो कीर मरकट की नाही ॥

बाते बना लेंगे । बातें सुनाना सीख लेंगे । परन्तु स्वयं आचरण नहीं करेंगे ।

परोपदेशबेलायाँ सर्वे शिष्टा भवन्ति ।

दूसरो को उपदेश देना होता है तो सब विद्वान बन जाते है ।

विस्मृन्ति तत्सर्व स्वकार्ये समुपस्थिते ॥

अपना काम सामने आता है तो याद नही रहती, भूल जाते हैं ।

जब कोई दूसरा मर जाता है तो वह धीरज बाँधते हैं कि संसार अनित्य है । यहाँ सब नाशवान् हैं । प्रभु की ऐसी ही मर्जी थी । अतः रोओ मत । परन्तु अपना कोई मर जाता है तो रोते हैं

पर उपदेश कुशल बहुतेरे ।
जे आचरहि ते नर न घनेरे ॥

अतः हमारे भगवान् हैं और हम भगवान् के है, यह उपदेश हमें देना नहीं है । अपितु लेना है । भगवान् से अपनेपन में हताश होने को किंचितमात्र, कही भी आवश्यकता नहीं है साँसारिक आशाएं किसी की भी आज दिन तक पूरी हुई नहीं और परमात्मप्राप्ति की

आशा आज दिन तक किसी की बाकी रही नहीं। परन्तु ससार से तो रखी आशा और भगवान् से रहे निराश, यह गलती की। अतः आज अब ही से स्वीकार कर ले कि भगवान हमारे है। उन पर हमारा पूरा अधिकार है। और ससार हमारा नहीं है। हमारा संसार पर अधिकार नही है। यह बहुत बढ़िया सार बात है।

नारायण नारायण नारायण नारायण



अचिंत्य का ध्यान

तं विद्याद् दुःख संयोग वियोगं योग संज्ञितम् ।
स निश्चयेन योक्तव्यो योगोऽनिर्विण्ण चेतसा ॥

(गीता ६।२३)

दुःखरूप संसारके संयोगसे रहित जो योग है उसको जानना चाहिए और न उकताये हुए चित्त से निश्चय पूर्वक उसको करना चाहिए। फिर प्रश्न उठता है कि उस योग का अनुष्ठान कैसे करे ? तो उसके लिए उपाय बताया…

संकल्प प्रभवान् कामांस्त्यक्त्वा सर्वानशेषतः ।

(गीता ६/२४)

संकल्प से उत्पन्न होनेवाली सम्पूर्ण कामनाओं का अशेषतः पूर्णतया से त्याग कर दें । और–

मनसैवेन्द्रियग्रामं विनियम्य समन्ततः ।

(गीता ६।२४)

इंद्रिय समुदाय को मन से सयमित करे । अर्थात् केवल बाहर से इन्द्रियों का संयम न हो, अपितु मन से भी शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध आदि विषयों का चिन्तन न हो । ऐसे एकान्त में बैठकर

'शनैः शनैरुपरमेद्बुद्धया धृति गृहीतया ।'

(गीता ६।२५)

धैर्य युक्त बुद्धि के द्वारा धीरे-धीरे संसार से उपराम हो जायँ। धीरे-धीरे का अर्थ है कि जल्दीबाजी न करे। उपरति न हो तो उकतावे नही, धैर्य रखे। और बुद्धि का एक ही ध्येय हो कि हमें तो परमात्मा को प्राप्त करना है और कुछ प्राप्त नहीं करना है। ऐसे होकर–

आत्मसंस्थं मनः कृत्वा न किंचिदपिचिंतयेत्।

(गीता ६।२५)।

मन को परमात्मा मे स्थित करके परमात्मा के सिवा और कुछ भी चिन्तन न करे।

वह परमात्मा सब जगह परिपूर्ण है। ऐसा परिपूर्ण है कि–

जासु सत्यता ते जड़ माया।
भास सत्य इव मोह सहाया॥

इस परमात्मा के सत् स्वरूप के व्यापक रहने के कारण यह असत् जड संसार सच्चा दिखाई देता है। जिस प्रकार स्फटिक पत्थर को लाल रंग के कपडे पर रखने पर वह लाल और काले रंग के कपडे पर रखने से वह काला दिखाई देता है। यद्यपि उसमें स्वयं में वह रंग नही होता। उसी प्रकार यह अनित्य, क्षणभंगुर संसार सत्य [परमात्मा] की सत्यता से दीखता है। संसार वास्तव में है नही। प्रतिक्षण ज।

रहा है, बदल रहा है, नष्ट हो रहा है। परन्तु परमात्मतत्व सब समय, सब जगह परिपूर्ण है। और इस परमात्मतत्व में इतनी ताकत है कि यह 'नहीं' को भी 'है' दिखाता है। उदाहरण के लिए बूंदी के लड्डू को हम मीठा कहते हैं। परन्तु बूंदी खुद मीठी नहीं होती। बूँदी बेसन की होती है बिल्कुल फीकी। परन्तु चीनी की चासनी के कारण मीठी दीखती है। तो उसमें मिठास बेसन का नहीं, चीनी का है। परमात्मा बाहर, भीतर, ऊपर, नीचे दसों दिशाओं में परिपूर्ण है। जैसे समुद्र के भीतर गोता लगानेवाले के गोता लगाते समय ऊपर नीचे, बराबर मे चारों ओर जल ही जल रहता है परिपूर्ण, इसी प्रकार हमारे सब ओर परमात्मा परिपूर्ण हैं। अतः मन को परमात्मा में स्थित करके परमात्मा के सिवाय अन्य कुछ भी चिंतन न करे। अब प्रश्न उठता है कि चिंतन करें तो नहीं, परन्तु यदि चिंतन आ जाय, तो क्या करे ? तो इसका उत्तर है कि जैसे समुद्र में लहर उठती है और उठकर स्वयं ही लीन हो जाती है, ऐसे ही चिंतन या संकल्प उठकर स्वयं ही लीन हो जायगा। उसके साथ तादात्म्य न करें। उसका न तो अनुमोदन करे और न विरोध करें। 'न किंचिदपि चिंतयेत्' किंचितमात्र भी चिंतन न करें। संसार की कोई बात

याद आ गई तो उसे न तो अच्छा माने न बुरा माने और न ऐसा माने कि मेरे में संकल्प आ गया। सकल्प का अनुमोदन कर दोगे तो भी सम्बन्ध जुड जायगा और उससे द्वेष करोगे कि हमारे में संकल्प हो गया, तो भी सम्बन्ध जुड़ जायगा। अतः राग-द्वेष के कारण सकल्प से सम्बन्ध नही जोडे। एकदम तटस्थ रहें उदासीन रहें। और जो परमात्मा सब जगह परिपूर्ण है, केवल उसको देखे, उसका ही चितन करे। यह है अचिंत्य का ध्यान।

राम राम राम राम राम

सुख 'लेने' से अन्तःकरण अशुद्ध होता है और सुख 'देने' से अन्तःकरण शुद्ध होता है। संग्रह की अपेक्षा त्याग का मूल्य अधिक है।

करने में सावधानी होने में प्रसन्नता

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया॥

(गीता१८।६१)

इसका अर्थ हुआ कि ईश्वर सम्पूर्ण प्राणियों को 'अपनी माया से भ्रमण कराते हुए सब प्राणियों के हृदय में स्थित हैं। तो प्रश्न उठता है कि सब कुछ ईश्वर ही कराते है क्या ?

तो अब इसका उत्तर सुनिए। एक होता है 'करना' और एक होता है 'होना'। तो करने में तो हम सब का अधिकार है; परन्तु होने में अधिकार नही। भगवान् कहते हैं--

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि॥

(गीता २।४७)

तेरा कर्म करने में अधिकार है, फल में कभी नही। इसलिये तू कर्म के फल का हेतु मत बन और तेरी अकर्मण्यता में भी आसक्ति न हो।

एक तो हम करते है और एक होता है। तो कर्म तो हम करते हैं और फल होता है। करने में जो

कर्तृत्व अभिमान रहता है, वही अगाड़ी फलभोग में परिणत होता है। परन्तु कर्तृत्व रहित जो क्रिया होती है, वह कर्म नही बनती और न फलभोग मे परिणत होती है हम जो काम करते है वह कामना तथा आसक्ति लेकर करते हैं और जो होता है वह भगवान् द्वारा बनाए हुए विधान से होता है।

करने में मनुष्य को सावधान रहना चाहिए और होने में प्रसन्न रहना चाहिए। करने में सावधानी का तात्पर्य है कि कर्तृत्व अभिमान तथा फल की इच्छा का त्याग करके अपनी पूरी शक्ति तथा सामर्थ्य से कार्य करे, क्योंकि कर्तृत्व अभिमान और फलेच्छ को रखकर जो कर्म किया जाता है, वह बाँधनेवाला होता है परन्तु–

यस्य नाहंकृतो भावो बुद्धिर्यस्य न लिप्यते।
हत्वापि स इमाँल्लोकान्न हन्ति न निबध्यते॥

(गीता १८।१७)

जिसके अहंकृत भाव नही है और बुद्धि का लेप, आसक्ति, कामना आदि नही है वह सब लोकों को मारकर भी न तो पारता है और न बंधता है; क्योंकि उसमें कर्तृत्व तथा भोक्तृत्व नही है। अत. करने में सावधान रहने का अर्थ हुआ कि कर्तापन के अभिमान का और भोग-इच्छा दोनों का त्याग करे।

वह कर्त्तापन और भोक्तापन भगवान् का बनाया हुआ नहीं है यह जीव ने स्वयं बनाया है–

न कर्तृत्वं न कर्माणि लोकस्य सृजति प्रभुः।
न कर्मफलसंयोगं स्वभावस्तु प्रवर्तते॥

(गीता ५।१४)

परमात्मा न तो कर्तृत्व को पैदा करते है, न कर्मों को करवाते है कि अमुक-अमुक काम तुम करो और न कर्म के फल के साथ सम्बन्ध करवाते है कि यह कर्म करने से तुम्हें यह फल मिलेगा। यह भगवान् की रचना की हुई नहीं है। कर्तृत्व इसने स्वयं बनाया है, कर्म यह स्वय करता है और फल का भागी स्वय बनता है। मनुष्य का अनादि काल से जो स्वभाव बना है, उसके वशीभूत होकर कर्म करता है, परन्तु वह मान लेता है कि वह जो कुछ करता है, प्रभु प्रेरणा से करता है। वास्तविकता यह है कि जब तक मनुष्य में कर्तृत्व अभिमान है; फलेच्छा है, आसक्ति है, कामना है तब तक वह प्रभु-प्रेरणा से कार्य नहीं करता। वह कामना की प्रेरणा से कार्य करता है और उसका फल बन्धन होता है। परन्तु जब स्वार्थ, कामना राग, विषमता आदि नहीं रहते और अन्तःकरण निर्मल होता है; तो उसकी क्रिया **फलजनक नहीं होती, बंधन कारक नहीं होती।**

कर्मण्यकर्म यः पश्येद् ।

(गीता ४।१८)

अर्थात् वह मनुष्य कर्म में अकर्म देखता है। और–

यस्य सर्वे समारम्भाः कामसंकल्पवर्जिताः ।
ज्ञानाग्निदग्धकर्माणं तमाहुः पण्डितं बुधाः ।।

(गीता ४।१६)

समारम्भाः अर्थात् सम्यक् आरम्भ, आरम्भ मे कम नही अर्थात् क्रियाओं में किंचितमात्र भी त्रुटि नही होती । और 'कामसंकल्पवर्जिता.' अर्थात् कामना का संकल्प किंचितमात्र भी नही, ऐसे पुरुष 'ज्ञानाग्निदग्धकर्मा' होते है अर्थात् उनके सब के सब कर्म ज्ञानरूपी अग्नि में दग्ध हो जाते है । ज्ञान क्या ? कि प्रकृति और पुरुष का सम्बन्ध विच्छेद हो जाता है। ठीक ज्ञान होने पर प्रकृति और पुरुष का सम्बन्ध विच्छेद हो जाता है । उस समय क्रियाएँ सब प्रकृति में रहती हैं, अपने में नहीं रहतीं । तो कर्म नही बनते । कर्म ज्ञानरूपी अग्नि-से दग्ध हो जाते है। और ज्ञान कब होता है ? कि जब 'सर्वे समारम्भा. कामसंकल्पवर्जिता.' सम्पूर्ण कर्म बिना कामना और संकल्प के होते है । और जब तक काम और सकल्प रहते है तब तक क्रियाएँ मनुष्य की स्वयं की होती हैं ।

अब विचार करना है कि जब क्रियाएँ स्वयं होती है तो यह क्रियाओं के करने में स्वतन्त्र है परतन्त्र ? तो कहते है कि करने में यह स्वतन्त्र और फल भोगने में परतंत्र है । परन्तु करने में अधिकार के अनुसार स्वतंत्र है, सर्वथा स्वतन्त्र नही जैसे आप अपने देश में रहने के लिए स्वतन्त्र हैं, पर दूसरे देश में जाने के लिए वहाँ से आज्ञा लेनी पड़ेगी इसी प्रकार मनुष्य करने में अपने-अपने क्षेत्र ए अधिकार के अनुसार स्वतंत्र है । हम मनुष्य लोक काम करने में स्वतंत्र है परन्तु लोकोत्तर जाने में ह स्वतंत्र नहीं है ।

दूसरी बात है कि हम जो कर्म करते है उसमे पाँच हेतु होते हैं :-

अधिष्ठानं तथा कर्ता करणं च पृथग्विधम् ।
विविधाश्च पृथक्चेष्टा दैवं चैवात्र पञ्चमम् ॥
(गीता १८।१४)

शरीरवाङ्मनोभिर्यत्कर्म प्रारभते नरः ।
न्याय्यं वा विपरीतं वा पञ्चैते तस्य हेतवः ॥
(गीता १८।१५)

ये पाँच हेतु होते है । इसमें विहित कर्म के जो संस्कार हैं वे भी हेतु हैं और जो चेतन सत्ता है, वह भी हेतु है ।

तो आपका प्रश्न था –

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति ।
भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया ।।
(गीता १८।६१)

सबके हृदय में ईश्वर विराजमान है और गाड़ी के ड्राइवर की तरह सम्पूर्ण प्राणियों को वही घुमा रहा है। अर्थात् मनुष्य स्वयं कुछ नही करता, सम्पूर्ण प्राणियो के द्वारा क्रिया कराने मे भगवान का हाथ है।

तो भगवान का हाथ कितना है।

कि 'यन्त्रारूढानि मायया'–अर्थात् भगवान अपनी माया से मनुष्यों के कर्मो के अनुसार उनके यन्त्र को प्रेरित करते है। स्फुरणा देते है। भगवान मनुष्य के संचित व प्रारब्ध के कर्मो के अनुसार क्रिया करने की प्रेरणा करते है। ईश्वर केवल स्फुरणा देते हैं–

न कर्तृत्वं न कर्माणि लोकस्य सृजति प्रभुः ।
न कर्मफलसंयोगं स्वभावस्तु प्रवर्तते ।।
(गीता ५।१४)

भगवान "यह काम तुम करो" "इस काम में लग जाओ", ऐसी प्रेरणा नहीं करते। और यह फल तुम्हें भोगना पड़ेगा, न ही ऐसी प्रेरणा करते है।

और तुम कर्त्ता बन जाओ, यह प्रेरणा भी भगवा नहीं करते ।

भगवान क्या करते है ? भगवान केवल स्फुरण करते हैं जिससे सब क्रियाएँ होती है । जैसे बिजल का दृष्टान्त है कि बिजली का माइक के साथ सम्बन्धक दिया तो आवाज फैलने लगी । हीटर के साथ सम्बन्ध कर दिया तो गर्मी हो गई, और बर्फ की मशीन के सा सम्बन्ध कर दिया तो बर्फ जम गयी । बिजली यंत्र को प्रेरणा देती है; परन्तु अमुक यंत्र से अमुक का करा लूँ, बिजली का आग्रह नहीं । बिजली निरपेक्ष रहती है, उसकी सत्ता स्फुरणा से सब क्रियाएँ होती हैं

ऐसे ही भगवान की सत्ता स्फूर्ति से मनुष्य के अपने अन्तःकरण के संस्कारों के अनुसार, स्वभाव के अनुसार क्रियाएँ होती है । उसके स्वभाव में कर्तृत्व अभिमान तथा फलासक्ति मुख्य है । यह कर्तृत्व अभिमान और फलासक्ति मनुष्य रखे, न रखे, इसमें वह स्वतन्त्र है । कामना रखने, न रखने में, राग-द्वेष रखने और न रखने [अर्थात् मिटाने] में मनुष्य स्वतंत्र है । परन्तु जब यह कर्तृत्व अभिमान, फलासक्ति, कामना, राग द्वेष आदि रखता है तो यह उनमें यन्त्रारूढ़ हो जाता है तो करने में परतन्त्र हो जाता है ।

इस वास्ते अर्जुन ने पूछा–

अथ केन प्रयुक्तोऽयं पापं चरित पूरुषः'। 'अनिच्छन्नपि'–न चाहता हुआ भी पुरुष पाप का आचरण क्यों करता है ? तो भगवान ने उत्तर दिया–

'काम एष'–यह जो कामना है कि यह मिलना चाहिए, यह नहीं मिलना चाहिए। यह होना चाहिए, यह नही होना चाहिए–यह सम्पूर्ण पापों की, अनर्थो की जड़ है। यह भी कामना है कि कामिनी, कांचन, कीर्ति मिले। परन्तु कामना का मूल है कि मेरे मन के अनुकूल बात हो जाय और मेरे मन के प्रतिकूल न हो।

जब तक कामना रहेगी, तब तक मनुष्य परतन्त्र रहेगा, परवश रहेगा। और इस कामना के रखने मिटाने में हम बिल्कुल स्वतन्त्र है।

इन्द्रियस्येन्द्रियस्यार्थे रागद्वेषौ व्यवस्थितौ।
तयोर्न वशमागच्छेत्तौ ह्यस्य परिपन्थिनौ ॥
(गीता ३/३४)

इन्द्रियों में राग-द्वेष छिपे हैं उन दोनों के वश में न होवे। यदि राग द्वेष के कहने में चलेगा तो राग-द्वेष को पुष्टि मिलेगी। परन्तु राग-द्वेष के वशीभूत

और तुम कर्त्ता बन जाओ, यह प्रेरणा भी भगवान नहीं करते ।

भगवान क्या करते हैं ? भगवान केवल स्फुरणा करते हैं जिससे सब क्रियाएँ होती हैं। जैसे बिजली का दृष्टान्त है कि बिजली का माइक के साथ सम्बन्ध कर दिया तो आवाज फैलने लगी । हीटर के साथ सम्बन्ध कर दिया तो गर्मी हो गई, और बर्फ की मशीन के साथ सम्बन्ध कर दिया तो बर्फ जम गयी । बिजली यंत्रों को प्रेरणा देती है; परन्तु अमुक यंत्र से अमुक काम करा लूँ, बिजली का आग्रह नही । बिजली निरपेक्ष रहती है, उसकी सत्ता स्फुरणा से सब क्रियाएँ होती हैं।

ऐसे ही भगवान की सत्ता स्फूर्ति से मनुष्य की अपने अन्तःकरण के संस्कारों के अनुसार, स्वभाव के अनुसार क्रियाएँ होती है । उसके स्वभाव में कर्तृत्व अभिमान तथा फलासक्ति मुख्य है। यह कर्तृत्व अभिमान और फलासक्ति मनुष्य रखे, न रखे, इसमे वह स्वतन्त्र है । कामना रखने, न रखने में, राग-द्वेष रखने और न रखने [अर्थात् मिटाने] मे मनुष्य स्वतंत्र है । परन्तु जब यह कर्तृत्व अभिमान, फलासक्ति, कामना, राग द्वेष आदि रखता है तो यह उनमें यन्त्रारूढ़ हो जाता है तो करने में परतन्त्र हो जाता है ।

इस वास्ते अर्जुन ने पूछा–

अथ केन प्रयुक्तोऽयं पापं चरित पूरुषः'। 'अनिच्छन्नपि'–न चाहता हुआ भी पुरुष पाप का आचरण क्यो करता है ? तो भगवान ने उत्तर दिया–

'काम एष'–यह जो कामना है कि यह मिलना चाहिए, यह नही मिलना चाहिए। यह होना चाहिए, यह नही होना चाहिए–यह सम्पूर्ण पापो की, अनर्थो की जड़ है। यह भी कामना है कि कामिनी, कांचन, कीर्ति मिले। परन्तु कामना का मूल है कि मेरे मन के अनुकूल बात हो जाय और मेरे मन के प्रतिकूल न हो।

जब तक कामना रहेगी, तब तक मनुष्य परतन्त्र रहेगा, परवश रहेगा। और इस कामना के रखने मिटाने में हम बिल्कुल स्वतन्त्र है।

इन्द्रियस्येन्द्रियस्यार्थे रागद्वेषौ व्यवस्थितौ।
तयोर्न वशमागच्छेत्तौ ह्यस्य परिपन्थिनौ॥
(गीता ३/३४)

इन्द्रियों में राग-द्वेष छिपे है उन दोनों के वश में न होवे। यदि राग द्वेष के कहने में चलेगा तो राग-द्वेष को पुष्टि मिलेगी। परन्तु राग-द्वेष के वशीभूत

न होने से राग-द्वेष मिट जायेंगे । अतः राग-द्वेष के वशीभूत न होने की बात बताई । तो राग-द्वेष को मिटाकर यन्त्र को शुद्ध कर लो ।

और एक दूसरा उपाय बताया–

'तमेव शरणं गच्छ'–कि जो ईश्वर सम्पूर्ण प्राणियों को घुमाता है, उसकी शरण जा । शरण जाने पर क्या होगा ? भगवान कहते है–

मन्मना भव मद्‌भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु ।
मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे ॥

(गीता १८।६५)

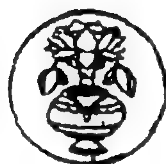
ऐसे भगवान की शरण होने पर सब कुछ ठीक हो जायगा और भगवान को ही प्राप्त होगा । अतः उपाय हुआ कि चाहे तो राग-द्वेष को मिटाकर यन्त्र को शुद्ध कर लो या भगवान की शरण हो जाओ ।

अतः जीव जब तक कर्तृत्व अभिमानपूर्वक अपने मन के अनुसार कार्य करेगा तो उसका फल उसे भोगना पड़ेगा और दुःख पाना पड़ेगा ।

इस वास्ते यह सोचना है कि हम जो करते हैं ईश्वर प्रेरणा से करते हैं, गलत है । हम जैसा कर्म करते हैं, हमें उसके अनुसार फल भोगना पड़ेगा । यह भगवान का विधान है कि ऐसा करोगे तो ऐसा

फल होगा । अतः करने में सदा सावधान रहें और जो होता है, उसमें प्रसन्न रहें कि सब हमारे प्रभु के विधान के अनुसार होता है ।

राम राम राम राम राम



गोरक्षा-हमारा परम कर्त्तव्य

(परमश्रद्धेय स्वामीजी श्रीरामसुखदासजी महाराजके विचार)

मनुष्यों के लिए गाय सब दृष्टियों से पालनीय है। गाय से अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष–इन चारो पुरुषार्थों की सिद्धि होती है। आजके अर्थप्रधान युग मे तो गाय अत्यन्त ही उपयोगी है। गोपालन से, गाय के दूध, घी, गोबर आदि से धन की वृद्धि होती है। हमारा देश कृषिप्रधान है। अतः यहां खेती में जितनी प्रधानता बैलों की है, उतनी प्रधानता अन्य किसी को भी नहीं है। भैंसों के द्वारा भी खेती की जाती है, पर खेती में जितना काम बैल कर सकता है, उतना भैंसा नहीं कर सकता। भैंसा बलवान् तो होता है, पर वह धूप सहन नहीं करसकता। धूप में चलने से वह जीभ निकाल देता है, जबकि बैल धूप में भी चलता रहता है। कारण है कि भैंसे में सात्त्विक बल नहीं होता, जबकि बैलमें सात्त्विक बल होता है। बैलों की अपेक्षा भैंसे कम भी होते है। ऐसे ही ऊँट से भी खेती की जाती है, पर ऊँट भैसों से भी कम होते हैं और वहुत मँहगे होते हैं। खेती करनेवाला हरेक आदमी ऊँट नहीं खरीद सकता। आजकल अच्छे-अच्छे जवान बैल मारे

जाने के कारण बैल भी मँहगे हो गये हैं, तो भी वे ऊँट जितनेमँहगे नही है यदि घरों में गायें रखी जायँ तो बैल घरों में ही पैदा हो जाते है, खरीदने नहीं पड़ते। विदेशी गायों के जो बैल होते है। वे खेती में काम नही आ सकते; क्योंकि उनके कन्धे न होने से उन पर जुआ नही रखा जा सकता।

गाय पवित्र होती है उसके शरीर का स्पर्श करने वाली हवा भी पवित्र होती है। गाय के गोबर-गोमूत्र भी पवित्र होते है। गोबर से लिपे हुए घरों में प्लेग, हैजा आदि भयंकर बीमारियाँ नहीं होतीं। इसके सिवाय युद्ध के समय गोबर से लिपे हुए मकानों पर बम का उतना असर नहीं होता, जितना सीमेण्ट आदि से बने हुए मकानों पर होता है। गोबर में जहर खींचने की विशेष शक्ति होती है। काशीमें कोई व्यक्ति साँप काटने से मर गया। लोग उसकी दाह-क्रिया करने के लिये उसको गंगा के किनारे ले गये। वहाँ पर एक साधु रहते थे। उन्होंने कि पूछा कि इस व्यक्ति को क्या हुआ ? लोगों ने कहा यह साँप काटने से मरा है। साधुने कहा कि यह मरा नही है, तुम लोग गाय का गोबर ले आओ। गोबर लाया गया। साधु ने उस व्यक्ति की नासिका छोड़कर उसके पूरे शरीर में (नीचे-ऊपर) गोबर का लेप कर

दिया । आधे घण्टे के बाद गोबर का फिर दूसरा लेप किया । इससे उस व्यक्ति के श्वास चलने लगे और वह जी उठा । हृदय के रोगों को दूर करने के लिए गोमूत्र बहुत उपयोगी है । छोटी बछड़ी का गोमूत्र रोज तोला-दो तोला पीने से पेट के रोग दूर होते हैं । एक सन्त को दमा की शिकायत थी, उनको गोमूत्र-सेवन से बहुत फायदा हुआ है । आजकल तो गोबर और गोमूत्र से अनेक रोगों की दवाइयाँ बनायी जा रही है । गोबर से गैस भी बनने लगी है । जो गैस चूल्हे जलाने में काम आती है ।

खेतोंमें गोबर-गोमूत्र की खाद से जो अन्न पैदा होता है, वह भी पवित्र होता है । खेतों में गायों के गोबर और गोमूत्र से जमीन को जैसी पुष्टि होती है, वैसी पुष्टि विदेशी रासायनिक खाद से नही होती । जैसे, एकबार अंगूर की खेती करने वालेने प्रयोग करके बताया कि गोबर की खाद डालने से अंगूर के गुच्छे जितने बड़े-बड़े होते हैं, उतने विदेशी खाद डालनेसे नहीं होते । विदेशी खाद डालने से कुछ ही वर्षों में जमीन खराब हो जाती है अर्थात् उसकी उपजाऊ शक्ति नष्ट हो जाती है । परन्तु गोबर-गोमूत्र से जमीन की उपजाऊ शक्ति ज्यों-की-ज्यों बनी रहती है । विदेशों में रासायनिक खाद से बहुत-से खेत खराब

हो गये हैं, जिन्हें उपजाऊ बनाने के लिए वे लोग भारत से गोबर मँगवा रहे है और भारत से गोबर के जहाज भर-भरकर विदेशों में जा रहे है।

हमारे देश की गायें सौम्य और सात्त्विक होती है। अतः उनका दूध भी सात्त्विक होता है, जिसको पीने से बुद्धि तीक्ष्ण होती है और स्वभाव शान्त, सौम्य होता है। विदेशी गायो का दूध तो ज्यादा होता है, पर उन गायों में गुस्सा बहुत होता है अतः उनका दूध पीने से मनुष्य का स्वभाव भी क्रूर होता है। भैंस का दूध भी ज्यादा होता है, पर दूध सात्विक नही होता। उससे सात्विक बल नहीं आता। सैनिको के घोडों को गाय का दूध पिलाया जाता है, जिससे वे घोडे बहुत तेज होते है। एक बार सैनिकोंने परीक्षाके लिये कुछ घोड़ों को भैंस का दूध पिलाया, जिससे घोड़े खूब मोटे हो गये। परन्तु जब नदी पार करने का काम पडा तो वे घोड़े पानी में बैठ गये। भैंस पानी में वैठा करती है; अतः वही स्वभाव घोड़ो में भी आ गया। ऊँटनी का दूध भी निकलता है, पर उस दूध का दही, मक्खन होता ही नहीं। उसका दूध तामसी होने से दुर्गति देनेवाला होता है। स्मृतियों में ऊँट कुत्ता,गधा आदिको अस्पृश्य वताया गया है।

सम्पूर्ण धार्मिक कार्यों में गाय की मुख्यता है। जातकर्म, चूड़ाकर्म उपनयन आदि सोलह संस्कारों में गाय का, उसके दूध, घी, गोबर आदि का विशेष सम्बन्ध रहता है। गाय के घी से ही यज्ञ किया जाता है। स्थान-शुद्धि के लिये गोबर का ही चौका लगाया जाता है। श्राद्ध-कर्म में गाय के दुध की खीर बनायी जाती है। नरको से बचनेके लिए गोदान किया जाता है। धार्मिक कृत्यो में 'पञ्चगव्य' काममें लाया जाता है, जो गाय के दूध, दही, घी, गोबर और गोमूत्र–इन पाँचो से बनता है।

कामनापूर्ति के लिये किये जानेवाले यज्ञों में गाय का घी आदि काम में आता है। रघुवंश के चलने में गाय की ही प्रधानता थी। पौष्टिक, वीर्य वर्धक चीजों में भी गाय के दूध और घी का मुख्य स्थान है।

निष्कामभावसे गायकी सेवा करनेसे मुक्ति होती है। गाय की सेवा करने से अन्तःकरण निर्मल होता है। भगवान् श्रीकृष्ण ने भी बिना जूती के गोचारण की लीला की थी, इसलिये उनका नाम 'गोपाल' पड़ा। प्राचीनकाल में ऋषिलोग वन में रहते हुए अपने पास गाये रखा करते थे। गाय के दूध, घी से उनकी बुद्धि प्रखर, विलक्षण होती थी, जिससे वे बड़े-बड़े ग्रन्थों की रचना किया करते थे। आजकल तो उन

ग्रन्थों को ठीक-ठीक समझनेवाले भी कम है। गाय के दूध-घी से वे दीर्घायु होते थे। इसलिये गाय के घी का एक नाम 'आयु' भी है। बड़े-बड़े राजा लोग भी उन ऋषियों के पास आते थे और उनकी सलाह से राज्य-चलाते थे।

गोरक्षा के लिये बलिदान करने वालों की कथाओं से इतिहास, पुराण भरे पड़े है। बडे भारी दुःख की बात है कि आज हमारे देशमें पैसे के लोभसे रोजाना हजारों की संख्या में गायो की हत्या की जा रही है! अगर इसी तरह गोहत्या चलती रही तो एक समय गोवंश समाप्त हो जायगा। जब गाये नहीं रहेंगी, तब क्या दशा होगी, कितनी आफते आयेगी—इसका अन्दाजा नही लगाया जा सकता। जब गायें खत्म हो जायेंगी, तब गोबर नहीं रहेगा और गोबर की खाद न रहनेसे जमीन भी उपजाऊ नही रहेगी। जमीन के उपजाऊ न रहने से खेती कैसे होगी? खेती न होने से अन्न तथा वस्त्र (कपास) कैसे मिलेगा? लोगो को शरीर-निर्वाह के लिये अन्न, जल और वस्त्र भी मिलना मुश्किल हो जायगा। गाय और उसके दूध, घी गोबर आदि के न रहने से प्रजा बहुत दुःखी हो जायगी। गोधन के अभाव में देश पराधीन और दुर्बल हो जायगा। वर्तमान में भी अकाल, अनावृष्टि, भूकंप,

आपसी कलह आदि के होने में गायों की हत्या मुख्य कारण है। अतः अपनी पूरी शक्ति लगाकर हर हालत में गायों की रक्षा करना, उनको कत्लखानो में जाने से रोकना हमारा परम कर्तव्य है।

गायों की रक्षा के लिये भाई-बहनों को चाहिये कि वे गायों का पालन करें; उनको अपने घरों में रखें। गाय का ही दूध-घी खाये, भैंस आदि का नहीं। घरो मे गोबर-गैस का प्रयोग किया जाय। गायोकी रक्षा के उद्देश्य से ही गोशालाएँ बनायी जायें, दूध के उद्देश्य से नही। जितनी गोचर-भूमियाँ है, उनकी रक्षा की जाय तथा सरकार से और गोचर-भूमियाँ छुड़ाई जायँ। सरकार की गोहत्या-नीति का विरोध किया जाय और सरकार से अनुरोध किया जाय कि वह देश की रक्षा के लिये पूरे देश में तत्काल पूर्णरूप से गोहत्या बन्द करे।

नारायण नारायण नारायण नारायण

मनकी खटपट कैसे मिटे ?

प्रश्न आया है कि मनकी खटपट (हलचल, अशान्ति) कैसे मिटे ?

बहुत सीधी सरल बात है कि मनमें जो खटपट है, वह अपने जाननेमें आती है। तो जाननेमे जो चीज आती है, देखनेमें जो चीज आती है, वह अपना स्वरूप नही होती है। मेरेको मकान दिखा, तो क्या मै मकान हो गया ? मेरेको एक पत्थर दीख गया, तो क्या मैं पत्थर हो गया ? दीखनेवाली चीज अलग होती है, और देखनेवाला अलग होता है। इसमें सन्देह नहीं है। खटपट होती है—इसका जिसको ज्ञान है वह आप हो। आप खटपटको देखनेवाले हुए। इसमें सन्देह है क्या ? खटपटको हम देखते है और खटपट दीखनेवाली हुई तो हमारे क्या बाधा लगी ? हमारेको पत्थर दीखा, वह तप गया तो हमें क्या, और वह ठण्डा हो गया तो हमें क्या ?

यह जो मनका एक संकल्प है कि यह खटपट न रहे यही खटपटका कारण है; क्योंकि इस संकल्पसे ही खटपटसे सम्बन्ध बना रहता है। मेरे मनमे खटपट न रहे, तो बस, अब खटपट मचेगी। इसलिए मन से

ही अपना सम्बन्ध तोड़ देना है। वास्तव में मन से सम्बन्ध है नहीं। केवल माना हुआ सम्बन्ध है मनको आपने अपना माना है, खटपट को आपने अपनेमें माना है। खटपट पैदा होती है और मिटती है, संकल्प उत्पन्न होते है और मिटते हैं, पर आप वही रहते हो। इसमें कोई सन्देह है क्या ? तो ये मिटे या न मिटे, इनको आप छोड़ दो। आप इनके साथ मिलो मत, इनसे राजी और नाराज मत होओ। खटपटसे राजी होना भी उससे मिलना है, और नाराज होना भी उससे मिलना है। साधक के लिए यह बहुत बढ़िया चीज है। बस, आप राजी और नाराज मत होओ। जैसे धूप आयी, और धूपसे स्वाभाविक मन हटता है, तो छायामें बैठ जाओ। पर न धूपके साथ विरोध करो, न छायाकी प्रशंसा करो। न किसीसे विरोध करना है, न प्रशंसा करनी है, यह साधकका खास काम है।

ज्ञानयोगी, कर्मयोगी, भक्तियोगी किसी भी साधनामें चलनेवाला योगी हो, जो परिस्थिति आये, उसमें राजी और नाराज न होना सबका काम है, योगिमात्रका काम है। जो परमात्मतत्वकी प्राप्ति चाहता है, उसके लिए यह बहुत आवश्यक है। कितनी ही सुन्दर चीज मिले, कितनी ही असुन्दर चीज मिले,

कितनी ही अनुकूलता आये, कितनी ही प्रतिकूलता आये, उन दोनोमें जो सुखी और दुःखी नही होता है, वह परमात्माको प्राप्त करता है और जो सुखी और दुःखी होता है, वह संसार में आता-जाता है, अर्थात् जन्मता-मरता है ।

अनुकूलता-प्रतिकूलता तो सबके आयेगी । जिसके घोडे हांकते है, उस अर्जुनको भगवान् कहते है कि–भैया! ये तो **'शीतोष्णसुखदुःखदा'** है । इनको तुम सहन कर लो–**'तांस्तितिक्षस्व' (गीता २।१४)** । इसको मैं मिटा दूँगा, ऐसा नही कहा । सहन करनेके लिए कहा ।

राग-द्वेशके वशीभूत न होवे । ठीक और बेठीक मानकर सुखी-दुःखी न होवे । इनकी चिन्ता न करे । फिर सब ठीक हो जायेगा । कितनी ही खटपट आवे, आप सुखी-दुःखी मत होओ । यह तो आने-जानेवाली है । इसका मन्त्र है–**'आगमापायिनोऽनित्याः'** यह मन-ही-मन जपो । इस भाव से जपो कि यह तो आने-जानेवाली है, अनित्य है । अच्छी या मन्दी कैसी क्यों न हो, खटपट आते ही यह सूत्र (मत्र) लगा दो कि **'आगमापायिनोऽनित्याः'**, ये आने-जानेवाली और अनित्य है । अनुकूल-से-अनुकूल आये, तो आने-जानेवाली है । प्रतिकूल से-प्रतिकूल आये, तो आने-

जानेवाली है । बिल्कुल सच्ची बात है । न अनुकूलता ठहरती है, न प्रतिकूलता ठहरती है । बस, इसको इतनी जान लो कि यह ठहरनेवाली नही है । इसमे कोई नया काम नही करना है । अब इनको लेकर क्या राजी हों और क्या नाराज हों ?

न प्रहृष्येत्प्रियं प्राप्य नोद्विजेत्प्राप्य चाप्रियम् ।

(गीता ५/२०)

प्रिय और अप्रियकी प्राप्तिमें सुखी और दुःखी क्या हों ? बढ़िया-से-बढ़िया परिस्थिति आये, तो वह भी ठहरेगी नहीं, पर आप ठहरते हो ! क्योंकि आपके सामने अनुकूलता और प्रतिकूलता-दोनों आती है और जाती है, और आप रहते हो । आप वही हो, बस अपनी तरफ ही दृष्टि रखो । ये जो आने-जानेवाली है, इनके साथ मिलो मत—यही मुक्ति है । इनके साथ मिल जाते हो—यही बन्धन है । आने-जानेवाली खटपट के साथ, परिस्थिति के साथ मिल जाना है—बन्धन, और न मिलना है—मुक्ति । कितनी सरल सीधी-सादी बात है !

आप कहते हो कि न चाहते हुए भी हम मिल जाते हैं, अनुकूलता-प्रतिकूलताके साथ एकदम मिलना हो जाता है, तो इसका भी उपाय है । इनसे मिल जाने पर भी यह तो ज्ञान है ही कि इनके साथ हम

मिल जाते हैं, पर हम अलग हैं, और ये अलग है। यह बात सच्ची है कि नही ? खटपट पैदा होती है, मिटती है, आती है, जाती है और आप रहते हो। तो खटपट और आप अलग-अलग दो हुए कि एक ?

अब कहते है कि 'हम अभी तो जानते हैं, पर जिस समय अनुकूलता-प्रतिकूलता आती है, उस समय पता नही लगता। हम तो मिल जाते है। मिल जानेपर पीछे पता लगता है कि मिल गये।' तो पीछे पता लगते ही यह विचार करो कि हम उस समय भी मिले नही थे, केवल मिला हुआ मान लिया था। वह हमारे साथ नही है, हम उससे अलग है, ऐसा सोचकर चुप हो जाओ, बस। वह मिट जायेगी। मिलनेका जो सुख-दुःख है, उसको आदर देनेसे ही आपके खटपट मिटती नही है। उसको आदर मत दो। कह दो कि हम तो मिले ही नहीं। फिर मिट जायेगी। जब ख्याल आये, तब अपने आपसे कहे कि नही-नही, हम नही मिले।

जब खटपट होती है, अनुकूलता-प्रतिकूलता होती है, तब तो उसमें बह जाते हो और सुखी-दुःखी हो जाते हो। और फिर जब पता लगता है कि मैं मिल गया, तब चिन्ता करते हो कि हाय-हाय मैं उनसे मिल गया ! तो जिस समय उससे मिलते हो, उस

समय भी उससे मिलना कभी छोड़ते नही, और जिस समय उससे मिले नहीं, उस समय भी उसकी चिन्ता करते हो। यही बीमारी है, दोनों समय आप उसको पकड़ लेते हो। वास्तवमें आप उससे मुक्त तो आप-से आप होते हैं। परिस्थिति, पदार्थ बेचारे तो आपको मुक्त कर रहे हैं, पर आप उनको पकड़ लेते हो कि हमारे खटपट रहती है, खटपट मिटती नही। इस तरह जिस समय खटपट नही होती, उस समय भी आप खटपटको पकड़े रहते हो। जब खटपट आती है, तब राग-द्वेष करके फँस जाते हो और जब नही आती, तब उसकी चिन्ता करके उसमें फँस जाते हो। तो ऐसा मत करो। ऐसा करके क्यों उसमें फँसो ?

भगवान् अर्जुनके रथ हाँकते हैं, उसका हुक्म मानते हैं। फिर भी भगवान्‌ने अर्जुनको फटकारा—

क्लैब्यं मा स्म गमः पार्थ नैतत्त्वय्युपपद्यते।
क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परंतप॥

(गीता २/३)

'हे अर्जुन ! नपुंसकताको मत प्राप्त हो, तुझमें यह उचित नही जान पड़ती। हे परंतप ! हृदयकी तुच्छ दुर्बलताको त्यागकर युद्धके लिए खड़ा हो जा।

अर्जुन चिन्ता करता है कि ये सब मर जायेंगे, तो कुलमें पाप फैल जायगा। पाप फैलनेसे वर्णसंकर पैदा

हो जायेंगे, फिर पितरोको पिण्ड नहीं मिलेगा । इनको मारने से बड़ा भारी पाप हो जायेगा। भगवान् कहते हैं कि अरे पहले ही हल्ला क्यों करता है ? अभी हुआ कुछ नही, चिन्ता ऐसे ही करता है ! जो हो गया, उसकी चिन्ता करता है अथवा जो नही हुआ, उसकी चिन्ता करता है, तो मुफ्त में उड़ता हुआ तीर अपने पर लेता है ! जो अभी है ही नहीं, उसकी आफत पहले ही मुफ्तमें खड़ी कर दी । तो खटपट आये तो उसमें फँस गये और चली जाय तो उसमें फँसे रहे । खटपट तो मिट जाती है, रहती नहीं, पर उसे पकड़-पकड़कर रोते है । उसे क्यों पकड़ो ? वह चली गयी तो मौज करो, आनन्द करो कि अब तो मिट गयी ।

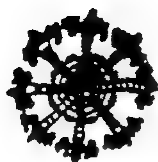
खटपटमें शक्ति नही है रहनेकी । किसीका जवान ब्याहा हुआ बेटा मर जाय, तो मोह-आसक्ति के कारण हृदयमें एक चोट लगती है। परन्तु वह मरता है, तब जैसी चोट लगती है, वैसी चोट दूसरे-तीसरे दिन नहीं रहती। पर रो-रो कर, याद कर-करके उसे रखते हैं। याद करते हैं फिर रोते हैं; इस तरह उसको पालते हैं। फिर भी वह हृदयकी चोट एक दिन मर ही जाती है। चिन्ता-शोक मर ही जाती है। आप उसे रख सकते ही नहीं । है किसीमें

ताकत कि उन्हें रख ले ? कुछ वर्षोंके बाद तो चिन्ता-शोक बिल्कुल मर जाते हैं। आपने तो रखनेकी खूब चेष्टा की, खूब रोये, खूब दूसरोंको सुनाया कि यों था, ऐसा था, वह चला गया। इतना शोकको पाला, फिर भी वह मर ही जाता है। मेहनत करनेपर भी नहीं रहता। इसलिये उसकी उपेक्षा कर दो। मर गया तो खत्म हो गया काम। अब क्या चिन्ता करें और क्या रोवें ? तो उसी समय शान्ति हो जाय। पर उसे पालेंगे, तो भी वह तो रहेगा नही। मेरी बात झूठी हो तो बोलो। तो जो मिटनेवाली थी, मिट गयी। बस खत्म हुआ काम। मिटने वाले के साथ मिलो मत। कितनी सीधी बात है ? मेरी धारणामें आप जितने बैठे हो, इसमें कोई निर्बल नही है, जो कि इस बातको न मान सके। आप अपने को निर्बल मान लो, तो मैं क्या करूँ ? इतना तो आप जानते हो कि मै धोखा नहीं देता, आपके साथ विश्वासघात नहीं करता। तो मेरी बातपर अविश्वास क्यों करो ? कोई धोखा होता हो तो बता दो कि तुम्हारी बात माननेसे यह धोखा होता है। कोई हानि हो तो बता दो। पर माननेसे लाभ होता है, इसे आप भी मानते हो और मैं भी मानता हूँ।

या तो स्वय इसे समझने के लिये विचार कर लो अथवा दूसरे की बात मान लो–इनमेसे एक कर लो। बुद्धि की तीक्ष्णताकी जरूरत नही है। तीक्ष्णता सहायता कर सकती है, पर बुद्धिकी शुद्धि (एक निश्चय) जितनी सहायता करती है, उतनी तीक्ष्णता नही करती। बुद्धिमें जड़ता हो या विक्षेप हो, इससे कोई अन्तर नही पड़ता। पर इस विषय को मै समझूँ इसी तरफ लक्ष्य हो।

वास्तवमे खटपट अपनेमे है ही नही–यही सार बात है।

राम राम राम राम राम



संसार 'नहीं' है और परमात्मा 'है'

परम श्रद्धेय श्रीस्वामीजी रामसुखदासजी महाराज के प्रातःकालीन प्रवचन

अपना कल्याण चाहनेवाला साधक यदि दृढ़ता से यह मान ले कि 'परमात्मा है' और' संसार नही है' । तो संसार का आकर्षण मिटकर परमात्मा से स्वतः प्रेम हो जायगा ।

'संसार है' ऐसा माननेसे ही विषय-भोग भोगते हैं और सुख सामग्री मानकर पदार्थोंका संग्रह करते हैं—इतनी ही बात नही है बल्कि अपना निर्णय भी कर लेते हैं—

कामोपभोगपरमा एतावदिति निश्चिताः ।

(गीता १६।११)

जो मनुष्य कामनाके अनुसार उपभोग परायण हैं उनका यह निश्चय होता है कि सुख भोगना और संग्रह करना—इसके सिवा और कुछ नही है !

शास्त्र, सत्सङ्ग, अपने विचार और अनुभवसे प्रायः हम सभी यह जानते है कि संसार का कोई भी पदार्थ अथवा सुख सदा रहनेवाला नहीं है । हमारे पूर्वज (बाप-दादा-आदि) भी नही रहे—कालके गालमें

सभा गये, तो हमारे शरीर (जो उन्ही धातु-पदार्थोंसे वने है) सदा कैसे रहेगे ? इसी प्रकार सुखके रहने और मिलने का केवल बहम है । भगवान् कहते हैं–

ये हि संस्पर्शजा भोगा दुखःयोनय एव ते ।
आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः ।।

(गीता ५।२२)

'जो इन्द्रिय तथा विषयोंके सयोगसे उत्पन्न होनेवाले सब भोग है, वे विषयी पुरुषोंको सुखरूप दीखते है, पर दुःखके कारण हैं और आदि-अन्तवाले अर्थात् अनित्य है । इसलिये हे अर्जुन ! बुद्धिमान् विवेकी पुरुष उनमें नहीं रमा करता ।

अगर ससार अपना होता तो हमे याद रहता, किन्तु पिछले जन्मके धन, शरीर, कुटुम्ब आदि कितने थे, कौन थे, कहाँ थे यह आपको याद तक नही है । जैसी दशा पिछले जन्मके व्यक्ति, पदार्थो के सम्बन्धकी हुई, वही दशा वर्तमानके धनादिकी होगी । अतः इन नाशवान् पदार्थो आदिके लिये समझ, समय और सामर्थ्यको नष्ट नही करना चाहिये । इन धन, शरीरादिके द्वारा निष्कामभाव से अर्थात् बदले मे कुछ न चाहकर सबकी सेवा कर देनी चाहिये । निःस्वार्थ भावसे जिनकी सेवा करते है, उनके ही पदार्थ समझकर सेवामें लगा देंगे तो उनको प्रसन्नता

होगी और आप असङ्ग हो जायेंगे । संसारमे अपनापनका सम्बन्ध केवल दूसरोंकी सेवा करनेके लिये है । ऐसा करनेसे आपको परमात्माकी प्राप्ति हो जायगी ।

यह नियम है कि हम जिसे सर्वोपरि और अपना मानते हैं उस तरफ स्वतः आकर्पण होता है, उसका भजन भी अपने आप होने लगता है । भगवान् श्रीकृष्ण कहते है–

यो मामेवमसम्मूढो जानाति पुरुषोत्तमम् ।
स सर्वविद्भजति मां सर्वभावेन भारत ॥

(गीता १५।१६)

'हे भरतवंशोद्भव अर्जुन ! जो ज्ञानी पुरुष मुझको इस प्रकार तत्त्वसे पुरुपोत्तम जानता है, वह सर्वज्ञ पुरुष सब प्रकारसे निरन्तर मुझ वासुदेव परमेश्वरको ही भजता है ।' जो पुरुष परमात्माको सर्वोत्तम जान लेता है, वही सर्वज्ञ है अर्थात् उसकी दृष्टि मे परमात्माके अतिरिक्त कुछ नही है ।

प्रायः लोग 'परमात्माहै, ऐसा मानते हुए भी नहीं मानते अर्थात् शास्त्र-विरुद्ध लोक मर्यादा विरुद्ध आचरण करते हुए डरते नही । जो सर्वत्र परमात्मा की सत्ता मानता है, उससे दोष-पाप हो ही कैसे सकते है ? और परमात्माको परम सुहृद् परम

कृपालु माननेपर चिन्ता, भय, दीनता आदि आ ही नहीं सकते । काकभुसुंडीजीको शाप मिलने पर भी 'नहि कछु भय न दीनता आई' ।

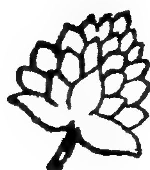
चिन्ता दीनदयालको मो मन सदा आनन्द ।
जायो सो प्रतिपालसी 'रामदास' गोविन्द ॥

ऐसे अवसरपर साधकको सावधान रहना चाहिए अर्थात् ऐसी विपरीत धारणा कभी नही करनी चाहिये कि भय, चिन्ता, शोक आ गये तो मैने परमात्माको माना ही नही, बल्कि यह कसौटी करनी चाहिये कि परमात्माके रहते हुए भय, चिन्ता, शोक मेरेमें कैसे आ सकते है ?

परमात्मा है—इस तत्त्वका ठीक अनुभव न होनेपर तथा संसार है—इस मान्यताके न मिटनेपर ऐसी एक तीव्र व्याकुलता होनी चाहिये, जिससे परमात्मा और संसार दोनों का तत्त्वबोध हो जाये । संसार दिखायी देते हुए भीं 'नही हैं' और हमारा नही है । परमात्मा दिखायी नहीं देते हुए भी 'है' और 'हमारेहैं'। मन, बुद्धि, इन्द्रियाँ आदि सांसारिक वस्तुओंसे हमें संसार दीखता है, क्योंकि जिस धातुका संसार है, उसी धातुके मन, बुद्धि, इन्द्रियाँ है—मनःपष्ठानीन्द्रियाणिप्रकृतिस्थानि (गीता अ० १५-७) मन सहित पाँचों इन्द्रियाँ प्रकृति (ससार) में स्थित है । हमारा

स्वरूप (आत्मा) और परमात्मा (है) दोनों एक ही तत्त्व है–ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः। (गीता अ० १५-७) 'इस देहमें यह सनातन जीवात्मा मेरा ही अंश है।' अतएव यदि हम अपनी सत्ता (स्वरूप) में स्थित हो जायं तो अभी परमात्मा दीखने लगेंगे। संसारके अंश से संसार दीखता है और परमात्माके अंशसे परमात्मा दीखते हैं। जबतक हमारी स्थिति 'नही' (संसार) में रहेगी, तबतक परमात्मा (सर्वत्र होते हुये भी) नहीं दिखाई देंगे, परन्तु स्थिति जब 'है' (परमात्मा) में हो जायेगी तब परमात्मा ही दिखायी देंगे। अतएव हमें आज–अभीसे ही दृढ़तापूर्वक यह मान लेना चाहिये कि 'परमात्मा है, सर्वत्र परिपूर्ण है और हमारे अपने हैं।

नारायण ! नारायण ! नारायण !



माँ !

एक सूरदास भगवान् के मन्दिर में गये तो लोगो ने उनसे कहा—'आप कैसे आये ? वे वोले—'भगवान् का दर्शन करने के लिये ।' लोगों ने पूछा—तुम्हारी आखे तो है नही, दर्शन किससे करोगे ?' वे वोले—'दर्शन के लिये मेरे नेत्र नहीं है तो क्या ठाकुरजी के भी नेत्र नही है ? वे तो मेरे को देख लेगे न ! वे मेरे को देखकर प्रसन्न हो जायेगे तो बस, हमारा काम हो गया ।'

अब भाइयो ! बहनो ! ध्यान दो । जैसे हमारे नेत्र न हों तो भी भगवान् के तो नेत्र है ही, उनसे वे हमारे को देखते है, ऐसे ही सज्जनो ! हमारे को भगवान् का ज्ञान न हो, तो क्या भगवान् को भी हमारा ज्ञान नही है ? हमारी जानकारी में भगवान् नहीं आये तो हम सूरदास हुए, तो क्या भगवान् की जानकारीमें हम नहीं है ? जब हम उनकी जानकारी मे है तो हमें कभी किसी बात की चिन्ता करनी ही नही चाहिये । जैसे, बालक जब तक अपनी माँ की दृष्टि में है, तब तक उसका अनिष्ट कोई कर नही सकता और उसके लिये जो कुछ भी चाहिये, उसका सब प्रबन्ध माँ करती है, ऐसे ही जब हम भगवान् की दृष्टि में हैं उनकी दृष्टि से कभी ओझल

होते ही नहीं तो हमारे लिये रक्षा, पालन, पोषण आदि जो कुछ आवश्यक है, वह सब कुछ वे करेंगे ।

भगवान् ने गीता में कहा—अप्राप्ति की प्राप्ति करा देना और प्राप्त की रक्षा करना—ये दोनों काम मैं करता हूँ—'योगक्षेमं वहाम्यहम्' (९।२२) 'मेरे मे चित्त लगने से तू सम्पूर्ण विघ्नों को मेरी कृपा से तर जायगा— 'मच्चित्तः सर्व दुर्गाणि मत्प्रसादात्तरिष्यसि' (१८।५८) और 'अविनाशी शाश्वत पद की प्राप्ति भी मेरी कृपा से हो जायगी'—'मत्प्रसादादवाप्नोति शाश्वतं पदमव्ययम्' (१८।५६) । तात्पर्य है कि उनके ज्ञान में हम हैं, हमारे पर उनकी कृपा है, तो वे विघ्नों से भी रक्षा करेंगे और अपनी प्राप्ति भी करा देंगे । परन्तु हमारा चित्त भगवान् मे रहना चाहिये । हमारा विश्वास, भरोसा सब भगवान् पर रहना चाहिये । हमारा विश्वास, भरोसा उन पर न रहने पर भी वे तो हम पर कृपा करते ही हैं । हमारा सब प्रबन्ध वे कर ही रहे हैं हमारा जैसे कल्याण हो, हमारे प्रति उनकी वैसी ही चेष्टा रहती है ।

हम सुख और दुःख को दो रूप से देखते हैं कि सुख अलग है और दुःख अलग है । परन्तु भगवान्

के यहाँ सुख-दुःख दोनो अलग-अलग नही है। जैसे-'लालने ताडने मातुर्नाकारुण्य यथार्भके । तद्वदेव महेशस्य नियन्तुर्गुणदोषयो ॥' लालन-प्यार में और मारमे माँ के दो भाव नही होते। एक ही भाव से माँ बच्चे का लालन-प्यार करती है और ताडना भी कर देती है अर्थात् प्यारभरे हृदय से प्यार भी करती है और हितभरे हाथसे थप्पड भी लगा देती है। तो क्या माँ बालक का अनिष्ट करती है ? कभी नही। ऐसे ही भगवान् कभी हमारी मनचाही बात कर दे और कभी हमारी मनचाही न करके थप्पड़ लगा दे, तो भगवान् के ऐसा करने में देखना चाहिये कि वह हमारी माँ है ! माँ! वह हमारे मनके अनुकूल-प्रतिकूल जो कुछ करे, उसमें हमारा हित ही भरा है, चाहे हम उसे न समझे। माँ की चेष्टा को बालक समझ सकता है क्या ? माँ की चेष्टा को समझने की बालक मे ताकत है क्या ? बालक में वह ताकत है ही नही, जो माँ की चेष्टाको समझ सके। बालक को तो माँ की चेष्टाको समझने की जरूरत ही नही है। वह तो बस, माँ की गोद मे पड़ा रहे। ऐसे ही 'भगवान् क्या करते है, कैसे करते हैं' इसे समझने की हमे कोई जरूरत नही है। वे कैसे है, कहाँ रहते है, इसको जानने की भी हमे कोई जरूरत नहीं है। क्या बच्चा माँ को

जानता है कि माँ कहाँ पैदा हुई है? किसकी बेटी है? किसकी बहन है? किसकी स्त्री है? किसकी देवरानी है? किसकी जेठानी है? किसकी ननद है? किसकी बूआ है? माँ कहाँ रहती है? किससे इसका पालन होता है? माँ क्या करती है? किस समय किस धन्धे में लगी रहती है? आदि बातों को बालक जानता ही नही और उसको जानने की जरूरत भी नही है। ऐसे ही हमारी माँ (भगवान्) कैसी है? कौन है? वह सुन्दर है कि असुन्दर है ? वह क्रूर है कि दयालु है ? वह ठीक है कि बेठीक है? वह हमारे अनुकूलहै कि प्रतिकूल है? आदि-आदि बातों से हमें क्या मतलब! बस, वह हमारी माँ है। वह हमारे लिए जो ठीक होगा, वह आप ही करेगी हम क्या समझें कि यंह ठीक है या बेठीक? अपना ठीक-बेठीक समझना भी क्या हमें आता है ? है हमें यह ज्ञान? क्या हमें यह दीखता है? अरे ! सूरदास को क्या दीखे! हम क्या समझें कि यह ठीक है कि बेठीक; अच्छा है कि मन्दा है। इन बातों को हम क्या समझे और क्यो समझे? हमें इन बातों के समझने की कुछ भी जरूरत नहीं है। बस हम उनके हैं और वे हमारे है। वे ही हमारे माता, पिता, भाई, बन्धु, कुटुम्बी आदि सब कुछ हैं और वे ही हमारे धन, सम्पत्ति,

वैभव, जमीन, जायदाद आदि सब कुछ हैं—
त्वमेव माता च पिता त्वमेव त्वमेव बंधुश्च—
सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव त्वमेव सर्व मम देवदेव ॥

कोई आप से पूछे कि तुम्हारी माँ कौन है ? ईश्वर ! तुम्हारा बाप कौन है ? ईश्वर ! भाई कौन है ? ईश्वर ! तुम्हारा साथी कौन है ? ईश्वर ! तुम्हारा काम करने वाला कौन है ? ईश्वर ! हमारे तो सब कुछ वही है। सब कुछ माॅ ही है। जैसे बच्चे के लिये धोबी भी माॅ है, नाई भी माॅ है, दाई भी माॅ है, धाई भी माॅ है, ईश्वर भी माॅ है, गुरु भी माॅ है, नौकर भी माँ है, मेहतर भी माॅ है, आदि-आदि । छोटे-से-छोटा और बडे-से-बड़ा सब कुछ काम करनेवाली माँ है। ऐसे ही हमारे सब कुछ भगवान् ही है, तो हमे किस बात की चिन्ता ! 'चिन्ता दीन दयाल को मो मन सदा आनन्द' हमारे मनमे तो सदा आनन्द-ही-आनन्द है, मौज-ही-मौज है ! हमारी चिन्ता वे करे, न करे, हमें इस बात की क्या परवाह है ! जैसे माॅ बालक की चिन्ता करे, न करे इससे बालक को क्या मतलब ! वह आप ही चिन्ता करती है बालककी, क्योकि बालक उसका अपना है। यह उस पर कोई अहसान है कि वह बालक का पालन करे ! अरे,

यह तो उसका काम है। वह करे, न करे, इससे बालक को क्या मतलब ? बालक को तो इन बातो से कुछ मतलब नहीं। ऐसे ही भगवान् हमारी माँ है बस, वह हमारी माॅ है और हमे न कुछ करना है, न जानना है, न पढ़ना है; किन्तु हरदम मस्त रहना है, मस्ती से खेलते रहना है। माॅ की गोदी में खेलता रहे, हँसता रहे, खुश होता रहे। क्यों खुश होता रहे कि इससे माँ खुश होती है, राजी होती है अर्थात् हम प्रसन्न रहें तो इससे माँ राजी होती है। माँ की राजी के लिये ही हम रहते हैं, खेलते है, कूदते है और काम-धन्धा भी हम माँकी राजी के लिये ही करते है। और बातो से हमें कोई मतलव ही नही है। हमें तो एक माँ से ही मतलब है।

जैसे माॅ के पास जो कुछ होता है, वह सब बालक के पालन के लिये ही होता है। माॅ का बल है, बुद्धि है, योग्यता है, विद्या है, शरीर है, कपड़े है, घर आदि सब कुछ बच्चे के लिये ही होता है। ऐसे ही भगवान् के पास जो कुछ सामर्थ्य है, शक्ति है, विलक्षणता है वह सब केवल हमारे लिये ही है। अगर हमारे लिये नही है तो किसके लिये है ? इस वास्ते हमें कभी किसी भी बात की चिन्ता नही करनी चाहिये। कभी चिन्ता आ भी जाय तो भगावन् से कह दो—'हे नाथ ! देखो, यह चिन्ता

आ गयी ।' जैसे बालकको प्यास लगती है, वह 'बू-बू' करता है तो माँ पानी पिला देती है। अब किसी भी कोशमें 'बू' नाम पानी का नहीं आया है, पर 'बू' कहते ही माँ पानी पिला देती है। ऐसे ही हम किसी भी भाषासे कुछ भी कह दे तो उसको माँ (भगवान्) समझ जाती है—

गूंगा तेरी बातको और न समझे कोय।
कै समझै तेरी मावडी कै समझै तेरी जोय ।।

जैसे गूंगे की भाषा उसकी माँ समझे या लुगाई (स्त्री) समझे। और कौन समझे उसकी भाषा को ? परन्तु हमारी भाषाको भगवान् समझे कि नही समझें, इससे भी हमें मतलब नही रखना है। अपने तो माँ ! माँ ! करते जाओ, बस। जैसे बालक माँ को किसी विधिसे थोड़े ही याद करता है। वह तो बस, माँ ! माँ ! करता रहता है। ऐसे ही माँ ! माँ ! करते रहो, बस; और हमें कुछ करना ही नही है। माँ प्रिय लगती है, माँ का नाम अच्छा लगता है। इव वास्ते प्यार से कहो—माँ ! माँ !! माँ !!!

हमें एक सज्जन मिले थे। वे कहते थे कि 'हम कभी माला फेरते है तो क्या करते है कि जैसे जीमने (भोजन करने) में आनन्द आता है तो सबड़का लेते है ऐसे ही माला फेरते है तो सबड़का

लेते हैं अब भजन की क्या बिधि है ! अपने को सबड़का लेना है, बस। मौज से नाम उच्चारण करे, कीर्तन करे। कुछ भी करे तो मस्त होकर करे। 'क्या होगा ? कैसे होगा ?'

[तरल पदार्थ-खीर, कढ़ी दाल आदि को चम्मच की भी सहायता लिये बिना, केवल अँगुलियों को एकसाथ सटाकर उनसे पीने की क्रिया को राजस्थानी भाषा में 'सबोड़ना' कहते है।]

इन बातों से अपना कोई मतलब ही नही है। इन बातों से मतलब माँ को है और इन बातों की माँ को ही बड़ी चिन्ता होती है। जैसे माता यशोदा और माता कौशल्या के चिन्ता होती है कि मेरे लालाका ब्याह कब होगा ? पर लाला तो समझता ही नही कि ब्याह क्या होता है, क्या नहीं होता है। वह तो अपनी मस्ती में खेलता ही रहता है। ऐसे ही हमारी माँ के चिन्ता होती है कि 'बच्चे का कैसे होगा, क्या होगा ?' पर हमें तो इससे कोई मतलब नहीं है, और इसको जानने की जरूरत भी नहीं है। माँ जाने, माँ का काम जाने ! अपने तो आनन्द-ही आनन्द में रहना है, और माँ की गोद में रहना है। हमारे में और बालक में फर्क इतना ही है और हम रोते नहीं। बालक तो भोलेपनसे मूर्खतासे रोता है। पर

हमारी तो माँ है, हम रोवे क्यों ? हम तो केवल हँसते रहें। मस्तीसे माँ की गोदी में पड़े रहें। कैसी मौजकी बात है ! कितने आनन्द की बात है ! 'तू जाने तेरा काम जाने'–ऐसा कहकर निश्चिन्त हो जाओ, निर्भय हो जाओ, निःशोक हो जाओ और निःशंक हो जाओ। हमें तो आनन्द-ही-आनन्द में रहना है, हरदम मस्ती मे रहना है। अपना तो कुछ काम है ही नहीं, सिवाय मस्तीके, सिवाय आनन्दके ! हमारे जिम्मेवारी तो एक ही है कि हरदम मस्त रहना, आनन्द में रहना। माँ ! माँ ! नाम लेना अच्छा लगता है, माँ ! माँ ! ऐसा कहना हमें प्यारा लगता है, इसवास्ते लेते है,। राम ! राम ! नाम मीठा लगत्ता है, इसवास्ते लेते है इसमें कोई विधि थोड़ी है कि इतना नाम ले। इतना-उतना क्या ! हम अपनी मर्जी से माँ-माँ करते रहें। किस तरह करना है कितना करना है ? कैसा भजन किया ? कितना भजन किया ? इसमें हमें क्या मतलब ? हमें माँ का नाम प्यारा लगता है, इसवास्ते खुशीसे प्रसन्नतासे लेते है। बस, अपने तो मौज हो रही है ! आनन्द हो रहा है ! खुशी आ रही है ! प्रसन्नता हो रही है !

मुख राम कृष्ण राम कृष्ण कीजिये रे !
सीताराम ने भजन लावो लीजिये रे !!

राम राम राम राम राम